भूमिका

महात्मा गान्धी के जीवन के समस्त कार्यों में आचारिक व्यवस्था पाई जाती है जिसका प्रचार उन्होंने अपने कार्यों, उपदेशों और लेखों द्वारा जीवन भर किया और जिसके प्रचार के लिये उन्होंने अपने प्राण तक दिये।

महात्मा गान्धी का सिद्धान्त था कि "धर्म अर्थात् सदाचार सदाचार के अनुकूल कार्य्य करने से ही सीखा जा सकता है, केवल व्याख्यानों से नहीं। जैसे कोई कला अभ्यास करने से ही सीखी जा सकती है ऐसे ही सत्य, अहिंसादि धर्म उनके अनुकूल आचरण करने के अभ्यास से ही सीखे जा सकते हैं"।

उस आचारिक व्यवस्था के धारण करने से संसार के सब भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों मे स्थायी शान्ति और प्रेम स्थापित हो सकता है और मनुष्यों की सब समस्याओं की पूर्त्ति सुगमता से हो सकता है और संसार स्वर्गधाम बन सकता है।

महात्मा गान्धी की उस आचारिक व्यवस्था का एक ठोस आधार पर प्रचार करने के लिये मैंने यह ग्रन्थ "गान्धी सदाचार शास्त्र" (सार्वभौमधर्म शास्त्र) बनाया है। इसमें दिखलाया गया है कि संसार के सब धर्मों के दो भाग होते हैं, एक आचारिक भाग दूसरा साम्प्रदायिक भाग। सब धर्मों में आचारिक भाग समान है और संसार के सब देशों मे भी वह एक ही प्रकार का है जो सब धर्मों का सार और प्रधान अङ्ग है और जिस पर मनुष्य समाज का अस्तित्व आश्रित है जिसको सार्वभौम धर्म कहते हैं और वास्तव में

जिसकी रक्षा के लिये सब धर्मों का साम्प्रदायिक अङ्ग बना है जो गौण है और सब धर्मों में भिन्न-भिन्न है। यदि सब धर्मों के लोग मिलकर सदाचारिक भाग का प्रचार करें तो सब धर्म वाले भाई भाई के समान होकर संसार में स्थायी शांति और प्रेम स्थापित कर सकते हैं और सब धर्मों के परस्पर झगड़े जो प्रायः साम्प्रदायिक भाग अर्थात् गौण अङ्ग पर हुआ करते हैं वह सदैव के लिये नष्ट होजावें और सब धर्मों में साम्प्रदायिक भाग के लिये सहिष्णुता स्वयं आजावे। साम्प्रदायिक असहिष्णुता को समूल नष्ट करने का मौलिक उपाय यही है कि इस "गान्धी सदाचार शास्त्र" का खूब प्रचार हो। दूसरा कारण इस पुस्तक के बनाने का यह है कि स्वतन्त्र भारतवर्ष में ऐसे नागरिकों की आवश्यकता है जो सदाचारी, निर्भीक, अनुशासित और परोपकारी हों और अपने कर्तव्यों को सुचारु रूप से पालन कर सकें ताकि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता सदैव सुरक्षित रह सके और भारतवर्ष इस योग्य बन सके कि वह संसार के सब देशों के परस्पर के कलहों को नष्ट कराकर सम्पूर्ण संसार में एक शांति और प्रेम का राज्य स्थापित करा सकें। ऐसे नागरिक, सदाचार की शिक्षा से जो सब धर्मों में समान है तैयार किये जा सकते हैं जिसके लिये सदाचार पर चर्चित पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। उसकी पूर्ति के लिये ही मैंने यह ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। सरकार का यह परम कर्तव्य है कि वह सदाचार की शिक्षा का देना शिक्षा की सब संस्थाओं में अनिवार्य्य कर दे तभी उपरोक्त नागरिक तैयार हो सकते हैं। और शिक्षा का उद्देश यही है कि मनुष्य

की सम्पूर्ण शक्तियाँ विकसित हो जावें। जहाँ बच्चों की मानसिक और शारीरिक शिक्षा का हम आयोजन करते हैं वहाँ सदाचार द्वारा उनका आत्मिक विकास होना भी उनकी सम्पूर्ण शिक्षा के लिए अनिवार्य है जिसके लिए भी हमको अवश्य आयोजन करना चाहिए जिस में यह पुस्तक सहायता देगी।

सबकी सच्ची शांति और आत्मिक उन्नति के लिये भी सदाचार अनिवार्य है जिससे आत्मा सुसंस्कृत होकर मनुष्य त्यागी, परोपकारी, सच्चा समाज सेवक और ईश्वर विश्वासी महात्मा बन सकता है।

वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, रामायण, बाइबिल, क़ुरान का उपदेश भी सदाचार के समर्थन में दिया है। सदाचार ही सार्वभौम धर्म है जिससे सब सुख और जीवन मुक्ति प्राप्त होती है। आशा है कि इस पुस्तक से सर्वत्र सदाचार का प्रचार होगा जिससे सब मनुष्यों का कल्याण और सुख होगा विद्वानों से प्रार्थना है कि वे अपने बहुमूल्य सुझाव मुझे बतला दें ताकि आगामी आवृत्तियों में उनके अनुसार संशोधन कर दिये जावें।

रामविहारी लाल चान्दापुरी
संस्कृत प्रोफेसर
डी० ए० वी० कालेज
कानपुर

ता० १—१—१६४६

विषय सूची

पंचम पाठ

षष्ठ पाठ

सप्तम पाठ

अष्टम पाठ

प्रथम पाठ

सदाचार की आवश्यकता

महात्मा गान्धी संसार के इतिहास में प्रथम पुरुष हैं जिन्होंने संसार के एक सबसे शक्तिशाली साम्राज्य को सदाचाररूपी आत्मबल द्वारा बिना किसी रक्तपात के ही पराजित किया और भारतवर्ष को, जो शताब्दियों से विदेशियों का दास था, स्वतन्त्र करा कर संसार के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया कि सदाचार में एक अलौकिक शक्ति है। आजकल के विज्ञान और यन्त्र के युग में, जिसमें विज्ञान ने उन्नति कर ऐसे घातक एटमबमादि अस्त्र निकाले हैं जो क्षणमात्र में लाखों मनुष्यों और बड़े से बड़े नगरों को नष्ट कर सकते हैं, ऐसे समय में संसार से भयङ्कर रक्तमय युद्धों को सदाचार ही सदैव के लिये दूर कर सकता है और सब देशों में शान्ति स्थापित करा सकता है। संसार यह जानने का इस समय उत्सुक है कि महात्मा गान्धी के सदाचार का क्या स्वरूप है क्योंकि संसार के सब देश एटमबमादि

अस्त्रों से भयभीत हैं। यद्यपि सब देश आत्मरक्षा के लिये युद्ध की तैयारी कर रहे हैं, परन्तु हृदय में यह भली प्रकार जानते हैं कि गत दो महायुद्धों की भाँति यदि अबकी बार महायुद्ध हुआ तो एटमबमादि अस्त्रों से संसार के सब देश नष्ट हो जायेंगे और मानव-सभ्यता का संसार से लोप हो जायगा। महात्मा गांधी का सदाचार ही इस समय संसार को नष्ट होने से बचा सकता है। महात्मा गांधी ने अपने सम्पूर्ण जीवन के कार्यों, व्याख्यानों और लेखों द्वारा विभिन्न अवसरों पर सदाचार का प्रचार किया है और सिद्ध किया है कि सदाचार का अवलम्बन करने से परस्पर की शत्रुता नष्ट हो जाती है और बड़े से बड़ा शक्तिशाली अत्याचारी सदाचारी मनुष्यों पर अत्याचार नहीं कर सकता और यदि संसार के मनुष्य सदाचारी बन जावें तो सब देशों में सब मनुष्यों में स्थायी शांति और प्रेम स्थापित हो जावे और फिर समस्त संसार में एक संयुक्त राज्य स्थापित हो जावे और युद्ध करने को कोई शत्रु ही न रह जावे। पाशविक बल में विश्वास करने वाले पूंछते हैं कि धर्म की क्या आवश्यकता है जब बिना धर्म के हम धनोपार्जन कर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं? हमें धर्म से क्या लाभ है? धर्म के बहुत अर्थ हैं। धर्म का अर्थ सदाचार भी है। धर्म अर्थात् सदाचार मनुष्य समाज के लिए अनिवार्य है।

मनुष्य भी एक जीव है। सब जीवों और मनुष्यों में यह भेद है कि मनुष्यों में धर्म का विचार रहता है परन्तु और जीवों में धर्म का विचार नहीं है। जैसे यदि मनुष्यों में धर्म का विचार न रहे तो एक दूसरे की वस्तुएँ चुरा लें, एक दूसरे को मार डालें, दूसरे की स्त्रियों को छीन लें, एक दूसरे का विश्वास न करें, न परस्पर व्यवहार हो सके, संक्षेप में जङ्गल की अवस्था मनुष्यों में होजाय। इसलिए समय समय पर मनुष्यों के समाज को शान्ति से चलाने के लिए कुछ नियम बनाए गये थे जो सब धर्मों की आधार-शिला हैं जैसे सत्य बोलना, निरपराधियों को न मारना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना, निर्धनों को दान देना, विवाह की संस्था स्थापित करना, मृतक संस्कार करना, इत्यादि। इन्हीं नियमों को धर्म का नाम दिया गया है। यदि ये नियम न होते तो बन के जीवों की भाँति मनुष्यों में भी छीना झपटी प्रत्येक वस्तु के लिये होती और मनुष्य समाज बन ही नहीं सकता, न शान्ति से जीवन व्यतीत होता। इसलिये मनुष्य समाज के जीवन के लिये धर्म अनिवार्य है। धर्म ही को सदाचार कहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन का उद्देश निश्चित कर लेना चाहिए। यदि मनुष्य संसार में अपना उद्देश नहीं निश्चित करता है तो उसकी दशा उस मनुष्य के समान है जो रेलगाड़ी

में बैठा है परन्तु नहीं जानता कि मुझे कहाँ जाना है, अथवा उस मनुष्य के समान है जो बाज़ार जाय और यह न जानता हो कि उसे क्या खरीदना है और इधर उधर मारा मारा फिरे। जहाँ मनुष्य जीवन का साधारण उद्देश यह है कि मनुष्य शांति और सुख से अपना जीवन व्यतीत करे और सांसारिक उन्नति करे, वहाँ मनुष्य का यह भी कर्तव्य है कि वह विचारे कि उसके जीवन का अन्तिम लक्ष्य क्या है। संसार के सब धर्म इस बात पर सहमत हैं कि मनुष्य के जीवन का मुख्य उद्देश ईश्वर की प्राप्ति है, जिससे सबसे बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। ईश्वर प्राप्ति के उपाय धर्म ही बतला सकता है। महात्मा बुद्ध ने अपना राजपाट केवल इसीलिए छोड़ा था कि वह जान सकें कि मनुष्य-जीवन का क्या उद्देश है और ज्ञान हो जाने पर उन्होंने बुद्ध धर्म का यह मुख्य नियम बनाया कि निर्वाण पाना मनुष्य-जीवन का मुख्य उद्देश है, जो केवल सचरित्र अर्थात् अच्छे कर्मों से ही प्राप्त हो सकता है। धर्म की आवश्यकता अपने जीवन के अन्तिम उद्देश अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति के पूरा करने और सांसारिक उन्नति करने के लिए है।

संसार में भी सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिये धर्म अर्थात् सदाचार अनिवार्य है। प्रत्येक मनुष्य को संसार में दुःख भोगना पड़ता है। यह संसार मृत्युलोक है जो यहां आया है

वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होगा। इसलिए अपने बन्धुजनों तथा प्रियजनों की मृत्यु पर और अपनी असफलताओं पर दुःख होना अनिवार्य है। उस दुःख को शांति से सहन करने और आत्मा को शांति देने का बल धर्म से ही आता है। आत्मा को किसी की मृत्यु पर तभी शांति मिल सकती है जब उसका ईश्वर में विश्वास हो और वह समझे कि एक शक्ति ऐसी भी है जिसके चक्र के सामने मनुष्य विवश है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जब अपनी बहन और अपने चाचा की मृत्यु देखी तो बड़ी गम्भीरता से विचारने लगे कि यह जीवन क्या है और मृत्यु क्या है? यदि सबको मरना है तो जीवन का रहस्य सबको अवश्य जानना चाहिए। मृत्यु पर विजय पाने के लिये उन्हें वैराग्य हुआ और वह ईश्वर की खोज में घरसे निकल गये, सन्यास लेकर ब्रह्म की खोज करके वैदिक धर्म का पुनः उद्धार किया तथा उपाय बतलाये जिनसे मनुष्य मृत्यु पर विजय पा सकता है। आत्मिक ज्ञान ही सच्ची शांति आत्मा को प्रत्येक दुःख में देता है धर्म अर्थात् सदाचार का एक मुख्य अंग ईश्वरप्रणिधान है जिसका अर्थ है कि मनुष्य अपना कर्तव्य कर फल ईश्वर पर छोड़ दे। इससे व्याकुलता नहीं होती इसलिए धर्म धैर्य से दुःख सहन करने के लिये अनिवार्य है।

प्रत्येक मनुष्य के तीन भाग हैं। एक शरीर, दूसरा आत्मा

द्वितीय पाठ

धर्म का अर्थ और स्वरूप

संस्कृत के कोषों में धर्म के बहुत अर्थ दिये हैं उनके अनुसार धर्म का अर्थ मजहब, सम्प्रदाय, सदाचार, कर्तव्य, न्याय, क़ानून, सच्चरित्रता, अनिवार्य विशेष गुण आदि हैं।

सब मजहबों, सम्प्रदायों और संसार के सब भागों में सब मनुष्यों में सदैव रहने वाला धर्म सदाचार है जो सब सम्प्रदायों में समान है, जिस पर मनुष्य समाज स्थित है और जिसके बिना मनुष्य समाज कोई कार्य्य नहीं कर सकता। इस कारण सदाचार सब से प्रधान धर्म है और प्रत्येक धर्म का सार है। विद्या विवेचनी अर्थात् प्रत्येक बात का विवेचन अर्थात् परीक्षा करने वाली कही गई है, इसलिये प्रत्येक विद्वान् का कर्तव्य है कि वह कोई बात बिना उसकी परीक्षा किये स्वीकार न करे। विद्या सदैव से नवीन २ अन्वेषणों और परीक्षणों से बढ़ती आई है और यदि सबका यह सिद्धान्त होता कि जो कुछ

पुराने बड़े लोग कह गये वही ठीक है और उसमें उन्नति हो ही नहीं सकती, तो आजकल जो उन्नति संसार में हम देख रहे हैं वह कदापि नहीं हो सकती थी। जिस प्रकार छोटी अवस्था के बने हुये वस्त्र, कोटादि, बड़े होने पर ठीक नहीं हो सकते ठीक उसी प्रकार विद्या भी जो पूर्व में अल्प थी वह युगों में बिना बढ़ाये संसार के योग्य नहीं हो सकती। यही कारण है कि मनुष्यों की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये समय समय पर नवीन धर्मशास्त्र बनते गये और भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न धर्मशास्त्र बने और धर्म के विषय में विवेचनापूर्ण गम्भीर विचार न करने के कारण मनुष्य, धर्म के साम्प्रदायिक अर्थात् गौण भाग को धर्म का सर्वस्व मानने लगे और संकुचित विचार के हो गये, जिसके कारण भिन्न भिन्न धर्मों अर्थात् सम्प्रदायों व मजहबों में कलह और उपद्रव होने लगे। धर्म का अर्थ जहाँ सम्प्रदाय का है वहाँ सदाचार का भी है। यदि हम सब धर्मों के सार को समझ जावें जो सब धर्मों का प्रधान अङ्ग हैं और सब धर्मों में समान है जिसको सदाचार कहते हैं, तो सब धर्मों में परस्पर की कलह तुरन्त शान्त हो जावे और सब धर्म वाले मिलकर सदाचार का प्रचार करें जिससे सब मनुष्यों का कल्याण हो। और यदि सब धर्मों का जो साम्प्रदायिक अर्थात् गौण अथवा अप्रधान भाग है जो भिन्न है उसके लिये सब

परस्पर सहिष्णुता रक्खें तो सब धर्मों में स्थायी मेल हो सकता है और सब धर्मावलम्बी मिल कर सब धर्मों के समान अङ्ग अर्थात् सदाचार के प्रचार के लिये कार्य्य कर सकते हैं जिससे संसार में स्थायी आनन्द स्थापित हो सकता है। धर्म का अर्थ कर्तव्य है इसी अर्थ को लक्ष्य में रख कर वैशेषिक दर्शन में धर्म के लक्षण किये हैं कि—

यतोऽभ्युदयनिश्श्रेयससिद्धिः स धर्मः। (वैशेषिक दर्शन)

जिससे अभ्युदय अर्थात् सांसारिक उन्नति और निश्श्रेयस् [जिससे बढ़ कर कोई बढ़िया वस्तु नहीं] अर्थात् मोक्ष प्राप्त हो, वह धर्म है। यह धर्म का विस्तृत अर्थ है। मनुष्य अपना कर्तव्य पालन करता हुआ सांसारिक उन्नति और पारलौकिक अत्यन्त आनन्द जिसे निर्वाण कहते हैं प्राप्त कर सकता है। सदाचार ही से सांसारिक उन्नति और मोक्ष प्राप्त होती है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपनी भगवद्गीता में धर्म के अर्थ कर्तव्य को लेकर लिखा है कि—

स्वधर्मेनिधनंश्रेय परधर्मो भयावह। (भगवद्गीता)

अपना धर्म अर्थात् कर्तव्य पालन करता हुआ नाश को प्राप्त होना अच्छा है परन्तु दूसरे के कर्तव्य करना भयानक है। जैसे अध्यापक अपना पढ़ाने का कर्तव्य तो पालन न करें और डाक्टर का कर्तव्य करें और रोगियों की दवा करें तो

परिणाम भयंकर होगा। एक सैनिक अपना कर्तव्य पालन करता हुआ युद्धक्षेत्र में विजय प्राप्त करे, अथवा मृत्यु को प्राप्त होवे। परन्तु यदि वह अपना कर्तव्य तो पालन न करे और अपने सेनापति का कर्तव्य करने लगे कि युद्ध भिन्न क्षेत्र में होना चाहिए, अथवा सेना को आगे व पीछे हटना चाहिये। यह निर्णय करने लगे तो परिणाम बहुत भयंकर होंगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रवर्तक आर्य्य-समाज के जीवन-चरित्र में लिखा है कि—एक मनुष्य ने उनसे पूछा कि मैं कुछ पढ़ा लिखा नहीं, मैं कैसे जानूँ कि कौन धर्म अच्छा है और क्या धर्म है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जिसे सब धर्म वाले अच्छा बतावें वही धर्म का सार है, उसी पर तुम चलो। जैसे सत्य बोलना, सदाचारी रहना, चोरी न करना इत्यादि।

सब वैमनस्य और कलह का मुख्य कारण यह है कि मनुष्य धर्म के वास्तविक स्वरूप को भलीभाँति नहीं समझते। प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय के कुछ भाग स्थायी अर्थात् सदैव एकसे रहने वाले हैं जो उसके सार तथा प्रधान अंग हैं और संसार के सब देशों में समान पाये जाते हैं और जो सब धर्मों में भी एक ही प्रकार के समान हैं जैसे अहिंसा, सत्य, परोपकार, आदि करना और चोरी, व्यभिचार, आदि पाप न करना,

ईश्वर से डरना, दूसरों के उपकार में स्वयं कष्ट उठाना, त्याग करना आदि जिनके विषय में चतुर्थ पाठ में विस्तार से कहा गया है। इन सबको सदाचार कहते हैं।

सदाचार की रक्षा-हेतु प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय के कुछ गौण अंग होते हैं जिनको धर्म का साम्प्रदायिक भाग कहते हैं और जो सब धर्मों में देश, काल तथा परिस्थितियों की भिन्नता के कारण भिन्न भिन्न होते हैं, जैसे किसी धर्म के संस्कार, रीति-रस्म आदि तथा अपने अपने धर्म सम्बन्धी गूढ़ तत्वों के विषय में अपने अपने भिन्न भिन्न मत (Theories)।

जब से संसार बना है एक से एक बढ़ कर विद्वान् हुये हैं जो अपने अपने समय में बहुत बढ़े चढ़े थे, और जो धर्मों के प्रवर्तक अथवा आचार्य्य हुए हैं। उन्होंने संसार के रहस्यों के विषय में अपने अपने मत (Theories) प्रकट किये कि वे गूढ़ तत्व क्या हैं? संसार कब से बना? मनुष्य मर कर कहाँ जाता है और कहाँ से आता है? स्वर्ग कहाँ है और नरक कहाँ है, इत्यादि।

जब तक संसार स्थित है और जब तक मनुष्यों के मस्तिष्क भिन्न भिन्न हैं तब तक गूढ़ तत्वों के विचारों में भिन्नता होना अनिवार्य है। जैसे मनुष्य मर कर कहां जाता है? यह यथार्थ में कैसे ठीक ठीक कहा जा सकता है, जब तक कि प्रमाण

मर कर लौट न आवे और बतावे। इस विषय में प्रत्येक धर्म के सिद्धान्त कल्पना या मत मात्र हैं, इस पर परस्पर एक दूसरे से लड़ना महामूर्खता है। जब तक संसार है भिन्न भिन्न विचार और तर्क इन विषयों पर रहेंगे। यथार्थ में संसार स्वयं एक पहेली है जो अनन्त रहस्यों से भरी हुई और एक समुद्र के समान है, और संसार के सम्पूर्ण विज्ञान (साइन्स) की विद्या से प्रकृति के जितने रहस्य अभी तक मनुष्य जान पाये हैं वह समुद्र में बिन्दु के समान है। प्रत्येक धर्म के आचार्य्यों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार संसार के रहस्यों और पहेली की पूर्ति करने का अपने अपने समय में प्रयत्न किया है। इसीलिये भिन्न भिन्न मत और कल्पनाएँ हैं, विचारों की स्वतंत्रता सबको होनी चाहिये उसके लिए परस्पर लड़ना मूर्खता है।

अपने समय में महात्मा बुद्ध के विचार सबसे उत्तम थे। ईसा के समय में ईसा के विचार सबसे उत्तम माने जाते थे। मोहम्मद साहब के समय में उनके विचार सबसे उत्तम थे। स्वामी शंकराचार्य्य के समय में उनके और स्वामी दयानन्द के समय में उनके विचार सबसे उत्तम थे। इसलिये दूसरे मतों के विचारों के लिए सहिष्णुता चाहिए।

वास्तव में धर्म सम्बन्धी दार्शनिक विचार धर्म के मुख्य अंग सत्यादि की रक्षा के लिए निर्मित किये जाते हैं। हमको

धर्म का पूरा स्वरूप पहले भली प्रकार जान लेना चाहिए।

यदि हम ध्यानपूर्वक संसार के धर्मों अर्थात् मजहबों तथा सम्प्रदायों पर विचार करें तो हम को ज्ञात होता है कि स्थूल रूप से प्रत्येक धर्म के चार अङ्ग हैं जिनमें पहले तीन अङ्ग साम्प्रदायिक हैं और चौथा सदाचारिक है।

धर्म के अङ्ग

प्रत्येक धर्म अर्थात् मजहब अथवा सम्प्रदाय के अङ्ग:—

१—धर्म की आधार पुस्तक और धर्म का प्रवर्तक।

२—धर्म के संस्कार और रस्म रिवाज और ईश्वर से व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ने के उपाय।

३—धर्म-सम्बन्धी दार्शनिक विचार।

४—धर्म का सार अर्थात् सदाचार जो सब धर्मों में समान है और सब धर्मों का आत्मा है। जिसको सार्वभौम धर्म कहते हैं, जिसका स्वरूप सत्य, अहिंसा आदि है, जो चतुर्थ पाठ में विस्तार से बताया गया है।

धर्मों का प्रधान अंग सदाचार है और धर्मों का गौण अथवा साम्प्रदायिक अंग, धर्म की आधार पुस्तक और उसके प्रवर्तक, संस्कार, रीति-रस्म और ईश्वर से व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ने के उपाय तथा उसके धर्म सम्बन्धी विचार हैं। सब धर्मों के ऊपर लिखे तीन गौण अर्थात् साम्प्रदायिक अंग वास्तव में

उनके चौथे प्रधान अंग सदाचार की रक्षा के लिये हैं। यदि सब धर्म अपने अपने साधारण प्रधान अंग जो सार और मुख्य है जिसको सदाचार कहते हैं मिलकर पालन करें और संसार में प्रचलित करें और गौण अर्थात् साम्प्रदायिक अंगों के लिये जो भिन्न हैं सहिष्णुता रक्खें तो संसार में सब धर्म वाले शान्ति से रह सकते हैं और संसार स्वर्गधाम बन सकता है। आपस में साम्प्रदायिक गौण अंगों के लिये जो कलह और अशान्ति होती है वह सब सदैव के लिये मिट सकती है। साम्प्रदायिक अर्थात् गौण अंग केवल प्रधान अंग की रक्षा के लिये हैं। गौण अर्थात् साम्प्रदायिक अंगों के लिये लड़ना मूर्खता है जैसे खेतों का सार फ़सल नाजादि हैं और फ़सल की रक्षा के लिये कोई छालदीवारी बनाता है, कोई खाई खोद देता है, कोई कांटे लगाता है। अब यदि किसान लोग इसी बात पर लड़ने लगें कि मेरी खाई अच्छी तेरी छालदीवारी अच्छी नहीं और परस्पर कलह करने लगें तो फ़सल की रक्षा नहीं हो सकती। सदाचार अन्न की फ़सल के समान है। सब धर्मों के लोग मिल कर सदाचार की रक्षा और प्रचार करें तो कलह हो ही नहीं सकता है। महात्मा गान्धी ने संसार के सम्मुख स्थायी शान्ति और आनन्द स्थापित करने के लिये यह मार्ग रक्खा कि मनुष्य-समाज के प्रत्येक विभाग के लिये सदाचार अनिवार्य है। आज

कल के समय में महात्मा गान्धी प्रथम पुरुष थे जिन्होंने बताया कि संसार के प्रत्येक देश की सरकार साम्प्रदायिक न होकर सदाचारी अवश्य हो और स्वयं भारतवर्ष में वह आदर्श सदाचारी सरकार स्थापित करना चाहते थे। महात्मा गान्धी ने सब धर्मों के समान अंग सदाचार का कार्य्यरूप से तथा व्याख्यानों, प्रार्थनाओं आदि से प्रचार किया जिसके कारण सब धर्मों के अनुयायी महात्मा गान्धी के अनुयायी होगये। जीवनकाल में किसी महापुरुष अथवा किसी धर्म प्रवर्तक के इतने अनुयायी संसार में अभी तक नहीं हुये जितने महात्मा गान्धी के हुये। इसका कारण यह है कि महात्मा गान्धी मनुष्य मात्र के नेता थे और सब सम्प्रदायों के अनुयायी उनको अपना नेता मानते थे क्योंकि वह सब धर्मों का सार अर्थात् सदाचार का प्रचार करते थे। उनके प्रचार का ढंग यह था कि धर्म अर्थात् सदाचार, सदाचरण करने से ही सीखा जा सकता है जैसे कोई कला अभ्यास करने से ही सीखी जा सकती है ऐसे ही सत्य अहिंसादि कार्य्यरूप में करने से ही आसकते हैं।

साम्प्रदायिक सरकार नहीं होना चाहिये

आजकल के सभ्य संसार ने मान लिया है कि प्रत्येक मनुष्य का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह जैसे विचार चाहे वैसे विचार रक्खे और जैसा चाहे वैसा विश्वास रक्खे मनुष्य के विचारों और विश्वासों की स्वतन्त्रता रखने के जन्म-सिद्ध अधिकार में किसी को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये न बल प्रयोग से उनके बदलने का प्रयत्न करना चाहिये और प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि वह अपने विचारों और विश्वासों का सभ्यता से प्रचार करे और सबको अपने विचार वाला शान्तिमय उपायों से बनावे। अनुभवों और अन्वेषणों द्वारा विचारों में और विश्वासों में परिवर्तन तथा उन्नति होना स्वाभाविक है। इसी कारण संसार में अनेक धर्म उत्पन्न हुये जो अपने भिन्न भिन्न विचार और भिन्न विश्वास रखते हैं। प्रायः प्रत्येक धर्म अपनी धर्म पुस्तक को ईश्वर की बनाई

मानता है और उसमें कहे हुये आदेशों को ईश्वर के आदेश मानता है। अब यदि इन अनेक सम्प्रदायों में से किसी एक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर किसी देश की सरकार स्थापित की जावे तो जो भी मनुष्य भिन्न सम्प्रदाय के हैं और अपने सम्प्रदाय के अनुसार काम करते हैं वह अपराधी माने जावेंगे।

एक देश में अनेक धर्मावलम्बी रहते हैं। इस कारण बहुतों पर अन्याय और अत्याचार होगा। इसलिये साम्प्रदायिक सरकार नहीं होना चाहिये किन्तु सरकार सदैव सांसारिक (Secular) रहे अर्थात् उसका किसी सम्प्रदाय के धार्मिक विश्वासों से सम्बन्ध न रहे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि साम्प्रदायिक सरकार होने से कितने अमानुषिक अत्याचार हुये।

प्राचीन समय में इङ्गलैण्ड देश में क्रिश्चियन साम्प्रदायिक सरकार स्थापित थी। इस कारण ईसाई धर्म के उस समय के विश्वासों के विरुद्ध यदि कोई मनुष्य अपने विचार प्रकट करता था तो उस को दण्ड दिया जाता था। उस समय का ईसाई विश्वास था कि पृथ्वी चपटी है, परन्तु विज्ञान (साइन्स) की उन्नति से जब विद्वानों ने पहले पहल यह घोषित किया कि पृथ्वी गोल है और संसार की सृष्टि, ईसाई धर्म के विश्वासों के विरुद्ध, बहुत प्राचीन समय में बनी और ऐसे ही ईसाई

धार्मिक विश्वासों के विरुद्ध और बहुत से विचार प्रकट किये तो उनको प्राण दण्ड तक दिये गये, क्योंकि उनके विचार ईसाई विश्वासों के विरुद्ध थे।

इतिहास में लिखा है कि इंगलैण्ड में रानी मेरी के राज्य काल में ऐसी नई बातें के कहने वालों को जो ईसाई धर्म के विश्वासों के विरुद्ध थीं जीवित जला दिया गया।

ऐसे ही इस्लाम साम्प्रदायिक सरकार टर्की देश में स्थापित हुई और इस्लाम धार्मिक विश्वासों के अनुसार अर्थात शरैयत के अनुसार टर्की में राज्य होता था। जिस शासन पद्धति में यह अनिवार्य है कि देश का राजा इस्लाम धर्म का भी अध्यक्ष हो। इसलिये टर्की का राजा जिसको खलीफा कहते थे वह टर्की देश का सान्सारिक स्वामी तथा इस्लाम धर्म का अध्यक्ष था और इस बात के लिये विवश था कि शरैयत के अनुसार राज्य करे। इतिहास में साम्प्रदायिक सरकार के भयंकर परिणाम लिखे हैं। इतिहास बताता है कि खलीफा उमर साहब ने जब एलेग्जेण्ड्रिया नगर पर अपनी सेना के द्वारा विजय पाई तो एलेग्जेण्ड्रिया नगर का बहुत बड़ा पुस्तकालय जिसमें अनेक देशों के इतिहासादि का बहुमूल्य पुस्तकों का बड़ा संग्रह था उस के जलाने की आज्ञा इन शब्दों में दी :—

"कुरान शरीफ अल्ला अर्थात ईश्वर का वाक्य है यह सब

पुस्तकें या तो अल्ला के वाक्य (कुरान शरीफ) के अनुकूल हैं या प्रतिकूल हैं। यदि अनुकूल है तो व्यर्थ है यदि प्रतिकूल है तो वह नष्ट करने योग्य है। इसलिये प्रत्येक दशा में रहने योग्य नहीं। इसलिये सब पुस्तकों को जला दो और सब पुस्तकें जलादी गईं।" (देखो खलीफों का इतिहास)

साम्प्रदायिक सरकार का दुष्परिणाम एक नवीन उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। ईसा की बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अभी थोड़े वर्ष हुए जब भारतवर्ष के इस्लाम धर्म के ही अन्तर्गत अहमदिया मुस्लिम सम्प्रदाय के दो मुसलमान अफगानिस्तान देश की राजधानी काबुल गये और वहाँ अपने सम्प्रदाय का प्रचार किया। अफगानिस्तान में इस्लामी साम्प्रदायिक सरकार है और शरैयत अर्थात् इस्लाम के धार्मिक विश्वासों के अनुसार राज्य होता है जिसका एक राज्य नियम यह है कि इस्लामधर्म के प्रवर्तक मोहम्मद साहब के दार्शनिक विचारों के विरुद्ध यदि कोई अपने सम्प्रदाय के विचार प्रकट करेगा तो उसको पत्थरों से मार डाला जायगा चाहे वह सम्प्रदाय इस्लाम धर्म के अन्तर्गत ही हो। शरैयत के अनुसार काबुल के न्यायाधीश ने उक्त दोनों मुसलमानों को पत्थरों से मार डालने का दण्ड दिया और वह मार डाले गये। इस घटना पर महात्मा गाधी ने इस्लाम के शरैयत कानून

का घोर विरोध किया। यह दुष्परिणाम सरकार को साम्प्रदायिक बनाने का हुआ अन्यथा राजा को इससे क्या प्रयोजन कि एक सम्प्रदाय के विचार इस्लाम धर्म के अनुकूल अथवा प्रतिकूल। मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपने स्वतंत्र विचार रक्खे और उनका प्रचार करे और किसी मत में विश्वास लावे या न लावे।

ऐसे ही स्वामी शंकराचार्य ने जब अपने वेदान्त के विचार प्रकट किये और बहुत राजा सनातनधर्मी हो गये तब बौद्धमत के बहुत से लोगों को दण्ड दिया गया, क्योंकि उनके विचार वेदान्त के विचारों के विरुद्ध थे। इस कारण साम्प्रदायिक सरकार कदापि नहीं होना चाहिए। राजा के लिए सब प्रजा समान है चाहे जिस धर्म की मानने वाली हो। राजा केवल धर्म अर्थात् सदाचार का प्रचार कराये ताकि सब प्रजा सदाचारी बने चाहे जिस सम्प्रदाय की हो। राजा किसी सम्प्रदाय का प्रचार कदापि न करावे। परन्तु भिन्न भिन्न सम्प्रदाय का प्रचार शान्ति और सभ्यता से करें जिसकी उनको पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए और सरकार सबकी रक्षा करे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रवर्तक आर्य्य-समाज ने अपनी सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ऋग्वेद कहता है कि —

"त्रीणि राजानाविदथे पुरूणिपरिविश्वानि भूषथः सदांसि"।

(ऋग्वेद म० ३ सू० ३८ मंत्र ६)

अर्थात् राजा तीन सभाएँ बनावे (एक राजसभा, दूसरी विद्या-सभा, तीसरी धर्म-सभा) और बहुत प्रकार से सबको सुख सम्पत्ति आदि से अलंकृत करे। राजसभा ,राजनियमादि बना कर देश का उपकार करे। विद्यासभा नवीन नवीन अन्वेषण करके आविष्कारों द्वारा संसार का उपकार करे और धर्म-सभा सदाचार का प्रचार करे ताकि सब मनुष्य सदाचारी बनें और अपराध न करें।

महात्मा गांधी राजनीति में भी सदाचार का व्यवहार चाहते थे। उनके विचार में सत्य और अहिंसा को मनुष्य अपने प्रत्येक कार्य में धारण करे तभी परस्पर शान्ति और मेल सब देशों में हो सकता है। संसार बहुत समय के पश्चात् और बहुत कटु अनुभवों के पश्चात् इस सिद्धान्त को मानने के लिए बाध्य हुआ है कि साम्प्रदायिक सरकार कदापि नहीं होना चाहिए, सरकार केवल सांसारिक रहे। परन्तु महात्मा गांधी ने यह और आवश्यक बतलाया है कि जहाँ सरकार सांसारिक रहे वहाँ वह सदाचारिक अवश्य रहे।

क्रिश्चियन धर्म में मार्टिन लूथर सुधारक उत्पन्न हुआ। उसने ईसाई धर्म में सुधार किये कि ईसाई सम्प्रदाय राजनीति और विज्ञान से अलग रक्खा जावे और उसने प्रोटस्टेंट धर्म को जन्म दिया जो पूर्व के रूढ़िवाद ईसाई रोमन कैथलिक

सम्प्रदाय के विरुद्ध विरोध प्रकट करता था। तब से धर्म के नाम पर लड़ने वाले युद्ध संसार से बन्द हुये और लाखों निरपराध मनुष्यों की जानें बची जिन का खून पहले केवल इसीलिये बहाया जाता था कि उन के धर्म के विचार उन धर्म वालों से भिन्न थे जिन के पास राज्य सत्ता थी।

ठीक ईसाई धर्म की भांति इस्लाम धर्म में टर्की के राजा कमाल पाशा ने यह सुधार किये कि राजनीति और विद्या को इस्लामी धार्मिक विश्वासों से पृथक किया जाये और कानून बनाया कि टर्की का राजा एक असुसलिम भी हो सकता है। टर्की के पूर्व मुसलिम खलीफा को जो टर्की का राजा भी था और इस्लाम धर्म का अधिपति भी था टर्की से निकाल दिया और खिलाफत अर्थात् खलीफा के पद को सदैव के लिये तोड़ दिया। रोमन लिपि टर्की में प्रचलित की। बुरका पहनना जो स्त्रियों का इस्लामी धार्मिक रूढ़ि के अनुसार अनिवार्य्य है क़ानून द्वारा हटाया जिसके अनुसार किसी स्त्री के सरकार को सूचना देने पर कि उसका पति या पिता उसे बुरका में रहने को बाध्य करता है पति तथा पिता को दण्ड दिया जाता है ताकि साम्प्रदायिक रूढ़ियाँ स्त्रियों के स्वास्थ्य में बाधा न डालें। अपने विचारों को प्रकट करने की स्वतन्त्रता सब को टर्की सरकार ने दी ताकि विद्या की उन्नति हो सके और

मोहम्मद साहब प्रवर्तक इस्लामधर्म के विचारों के विरुद्ध विचार भी यदि किसी व्यक्ति के हों तो उसको अधिकार दिया कि सभ्यता से वह व्यक्ति अपने विचार प्रकट कर सकता है। टर्की टोपी का पहनना और दाढ़ी का रखना जो इस्लाम धर्म की रूढ़ियों के अनुसार अनिवार्य था कानून द्वारा मनुष्यों की इच्छा पर छोड़ दिया। कानून बनाया कि धर्म प्रत्येक व्यक्ति का ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ना सिखाता है इसलिये व्यक्तिगत है। इससे मनुष्य समाज में बाधा नहीं आनी चाहिये और प्रत्येक मनुष्य को स्वतन्त्रता है कि वह इस्लामधर्म की बातों पर ईमान अर्थात विश्वास लावे अथवा न लावे। यदि चाहें तो मनुष्य मिलकर बाजा बजते समय भी नमाज पढ़ सकते हैं, इत्यादि अनेक कानून बनाए। तब से टर्की देश धर्मान्धता से मुक्त हुआ और आज सब इस्लामी देशों से बढ़कर उन्नति शिखर पर है। इसका कारण यही है कि वहाँ शरेयत अर्थात् इस्लामी विश्वास और रूढ़ियों पर आश्रित क़ानून सदा के लिये विदा कर दिया गया और इस्लाम सम्प्रदाय को राजनीति और विद्या से बिल्कुल पृथक कर दिया गया। संसार में सम्प्रदाय से राजनीति और विद्या को अलग रखने से ही सुख और शान्ति स्थापित हो सकती है।

प्रत्येक स्थान पर आजकल धर्मों में जो परस्पर कलह होता है उसके नाश करने का एक दूसरा मौलिक उपाय भी है वह यह

है कि झगड़ों का मुख्य कारण समूल नष्ट कर दिया जावे। वह मौलिक उपाय यह है कि मनुष्य को भली प्रकार समझा दिया जाय कि धर्म का साम्प्रदायिक भाग गौण है और सब धर्मों में भिन्न है उसके लिये सहिष्णुता रखना चाहिये। धर्म का मुख्य और प्रधान भाग सदाचार है जो सब धर्मों का सार है जिसको सब धर्म के मनुष्य धारण करें और मिल कर प्रचार करें। वास्तव में सदाचार भाग का मिल कर प्रचार करने में साम्प्रदायिक भाग में सहिष्णुता स्वयं आजावेगी और परस्पर के कलह स्वयं समाप्त हो जावेंगे। इसीलिये महात्मा गांधी प्रत्येक दिन अपनी प्रार्थना सभाओं में सब धर्मों की धार्मिक पुस्तकों से सदाचार सम्बन्धी उपदेशों का प्रचार किया करते थे ताकि सब धर्मों के अनुयायी सदाचारी बनें और मिल कर सदाचार का प्रचार करें।

सदाचार का स्वरूप

सदाचार सब धर्मों का सार और प्रधान अङ्ग है और संसार के सब देशों में एक जैसा सदैव रहने के कारण सार्वभौम धर्म कहलाता है, जिसके पालन करने ही से मनुष्य मनुष्य कहाता है और जिस पर मनुष्य समाज आश्रित है और जिसके बिना मनुष्य समाज स्थित नहीं रह सकता और जिसके पालन करने से सान्सारिक उन्नति और ईश्वर प्राप्ति होती है। उस सदाचार को योगशास्त्र में यम और नियम के नाम से कहा गया है। ऐसे ही परोपकार या जनसेवा अनुशासन और परस्पर सदाचार का व्यवहार और आचारिक साहस सब धर्मों में समान हैं।

मनुष्य जीवन के उद्देशों की पूर्ति और सफलता के लिये सदाचार अनिवार्य है। नीचे लिखी बातें सदाचार कहाती हैं :—

यम—(१) अहिंसा

किसी को गाली देने से लेकर मार डालने तक कष्ट देने को हिंसा कहते हैं ऐसा न करना अहिंसा है। सिंह भेडियादि क्रूर जानवर हिंसा करते हैं परन्तु मनुष्यता इसी में है कि मनुष्य परस्पर प्रेम और शान्ति से रहें और परस्पर वन के जीवों के समान एक दूसरे को हानि तथा चोटादि न पहुँचावें। मनुष्य को परस्पर मैत्र तथा सहिष्णुता से रहना चाहिये। मनुष्यों में अहिंसा होना सब धर्म बताते हैं परन्तु कोई २ धर्म अहिंसा की सीमा पशुओं तक बढ़ाते हैं। निरपराधी मनुष्य की हिंसा सब धर्मों में महापाप बतलाते हैं। मनुष्य समाज की रक्षा के लिये और उसमें अहिंसा स्थित रहने के लिये हिंसा करने वालों को न्यायालयों द्वारा प्राण दण्ड दिया जाता है। अहिंसा की रक्षा के लिये डाकुओं और आततायियों की हिंसा करना धर्म है परन्तु केवल सार्वजनिक शान्ति और लोकहित के लिये ही हिंसा को धर्म माना गया है स्वार्थ के लिये नहीं। युद्ध भी उसी समय धर्म हो जाता है जब मनुष्य समाज और लोकहित का कोई राष्ट्र हनन करता हो और सदाचार को नष्ट कर बैठा हो। श्रीरामचन्द्र ने युद्ध कर रावण दुराचारी की हत्या लोकहित के लिये की स्वार्थ के लिये नहीं। तभी लङ्का को जीत कर रावण के भाई विभीषण सदाचारी को लंका का राज्य

दे दिया । ऐसे ही श्रीकृष्ण ने दुराचारी दुर्योधन को मारने के लिये लोक हित के लिये युद्ध कराया ।

२–सत्य

सब धर्म सत्य को धर्म का सार मानते हैं। सत्य तीन प्रकार का होता है—मानसिक, वाचिक और कायिक अर्थात् जैसा मन में हो वैसा कहा जावे और वही किया जावे। यदि मन में कुछ और वाणी में कुछ और कार्य्य में कुछ और हो तो वह सत्य नहीं है और वैसा करने वाला मनुष्य सदाचारी नहीं है। प्रत्येक धर्म अपने को सत्य बतलाता है। सब धर्मों की आत्मा सत्य है और सत्य की रक्षा के लिये ही सब धर्मों का गौण भाग बना है और गौण भाग का भी सार सत्य ही है । उदाहरण के लिये सब धर्मों का विवाह संस्कार लीजिए। वैदिक धर्म में विवाह सम्बन्धी कुछ प्रतिज्ञायें हैं जो विवाह का सार भाग हैं जिन को सत्यता से पालन करने के लिये वर-वधू प्रतिज्ञा करते हैं। अग्नि की सात परिक्रमा करना अथवा सात पद चलने आदि का भी सार वह प्रतिज्ञायें हैं जो वर-वधू यह क्रियाएँ करते हुए करते हैं उनको सत्यता के साथ पालन करने के लिये मनुष्यों को एकत्रित करके सबके सम्मुख वह की जाती हैं। ईसाइयों में गिरजे में जाकर रूमाल और अँगूठी बदलना

आदि क्रियाओं के साथ जो प्रतिज्ञाएँ होती है वह विवाह का सार है। ऐसे ही मुसलमानों में काजी के सम्मुख वर वधू जो इक़रार करते हैं वह विवाह संस्कार का सार है। सब धर्मों के अनुसार विवाह संस्कार के बाद एक पुरुष और एक स्त्री का सम्बन्ध पति पत्नी का हो जाता है जो यदि विवाह न हो तो वह सम्बन्ध पाप और दण्डनीय अपराध माना जावे। अब सब धर्मों का मुख्य अङ्ग और सार सत्य प्रतिज्ञाएँ हैं जो सब धर्मों में समान हैं और अग्नि के चारों ओर घूमना, अँगूठी और रूमाल बदलना, बहुत मनुष्यों को भोजन कराना आदि गौण अंग हैं और सब धर्मों में भिन्न २ हैं। इन भेदों के लिये परस्पर लड़ना मूर्खता है। यदि सब धर्म सत्य का प्रचार करें और उसी को बड़ा धार्मिक माने जो सत्य आचरण करता हो तो संसार में स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है।

यदि संसार से सत्य हट जावे तो सब धोखा देने लगें। किसी का कोई विश्वास न करे और मनुष्य समाज स्थित नहीं रह सकती इसलिये सत्य प्रत्येक धर्म का सार है।

३—सत्याग्रह

सत्य और अहिंसा में एक अलौकिक शक्ति है। महात्मा गांधी के पूर्व सत्य और अहिंसा की शिक्षा योगियों के लिए योगशास्त्र के यम नियमों में तथा सब धर्मों के धार्मिक ग्रन्थों

में प्रायः इसलिए मिलती थी कि संसार के झगड़ों से आत्मा को शान्ति देने तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिये मनुष्य अहिंसा और सत्य को धारण करे। परन्तु महात्मा गांधी वर्तमान युग में पहले मनुष्य हैं जिन्होंने अहिंसा और सत्य का प्रयोग राजनैतिक क्षेत्र में किया और संसार को एक मार्ग दिखाया कि न केवल संसार की प्रत्येक सरकार अपने व्यवहारों में अहिंसा और सत्य का अवलम्बन करे किन्तु राजनैतिक अधिकारों के लेने तथा सब प्रकार के अत्याचार नष्ट करने के लिए सत्य और अहिंसा अलौकिक शक्ति रखते हैं जिनसे मनुष्यों की प्रायः सब समस्याओं की पूर्ति हो सकती है। महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्य का नाम सत्याग्रह रक्खा जिसके शब्दार्थ सत्य पर आग्रह करना, अर्थात् डटे रहना है और स्वयं किसी की हिंसा न करके सत्य के हेतु अपने ऊपर कष्ट सहन करना है चाहे उसमें अपने प्राण तक ले लिये जावें। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह का प्रयोग अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध किया जो संसार के एक सबसे बड़े शक्तिशाली राज्यों में था और भारतवर्ष को शताब्दियों से दासता की जञ्जीरों में अत्यन्त बल से जकड़े हुये था। महात्मा गांधी ने विचारा कि सवा अथवा डेढ़ लाख विदेशी अंग्रेजी सेना और विदेशी प्रबन्धक अधिकारी अपनी सेना और पुलिस के बल पर

चालीस करोड़ भारतवासियों के सहयोग के कारण ही भारत-वर्ष को परतंत्र और दास बनाये है जो असत्य कार्य्य है। यदि भारतवासी सत्याग्रह करें और इस असत्य सरकार से असहयोग करें तो भारत बिना ख़ूनी क्रान्ति वा युद्ध के स्वतंत्र हो जावे। महात्मा गांधी ने राउलेट और नमक कानून आदि अत्याचारी कानूनों को सभ्यता से तोड़ कर सत्याग्रह किया। लाखों सत्याग्रही जेल गये बहुतों पर लाठी और गोलियों का प्रहार हुआ। २५ वर्ष तक स्वराज्य का आन्दोलन चलता रहा। अन्त में अंग्रेजी सरकार को विवश होकर भारतवर्ष को स्वराज्य देना पड़ा जो संसार में प्रथम उदाहरण बिना ख़ूनी युद्ध के स्वतंत्रता लेने का है। सत्याग्रह की सफलता का कारण यह है कि अत्याचारी थोडे मनुष्य सेना और पुलिस के पाशविक बल से बहुत से निर्बल मनुष्यों पर अत्याचार करते हैं और शोचनीय दास बनाते हैं। यदि प्राणों का मोह छोड़ कर बहुत मनुष्य असहयोग करदें तो कोई अत्याचारी सरकार नहीं टिक सकती।

कौटुम्बिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी सत्याग्रह से सुधार किया जा सकता है और अन्याय नष्ट किया जा सकता है। जैसे यदि कुटुम्ब में कोई पुरुष दुराचारी मदिरादि का व्यसनी हो तो उससे

सहयोग करने से वह ठीक हो सकता है । ऐसे ही समाज
कुरीतियाँ और दूषित रूढ़ियाँ भी सत्याग्रह से सुधारी व
की जा सकती हैं जैसे छुआछूत की कुप्रथादि ।

यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि महात्मा गांधी किसी दशा में
ी खूनी युद्ध के विरुद्ध थे । उनका सिद्धान्त था कि निन्नानवे
तिशत प्रयत्न खूनी युद्ध रोकने का करना चाहिये और
न्त में जब कोई मार्ग न रहे तो खूनी युद्ध अनिवार्य हो जाता
। जैसे कशमीर पर लुटेरों के सैनिक आक्रमण के विरुद्ध
ारतवर्ष की युद्ध घोषणा महात्मा गांधी की सम्मति से हुई
ौर महात्मा गांधी ने कई बार घोषित किया कि 'यदि पाकि-
तान सरकार निन्नानवे प्रतिशत प्रयत्नों से भी न्याय और
दाचार के मार्ग पर नहीं आती तो उससे युद्ध अनिवार्य है ।

अहिंसा की भांति सत्य के भी अपवाद हैं । जैसे सत्य
ी की रक्षा के लिए लोकहित के हेतु अपराधियों का पता
ागाने अथवा अपराधियों के पकड़ने के लिए सरकार की
ुलिस असत्य का प्रयोग कर सकती है जो सदाचार और धर्म
है । ऐसे ही सदाचार की रक्षा के लिए और लोकहित के लिए
किए गए युद्ध में सरकारी सेना असत्य का प्रयोग शत्रुओं को
पकड़ने आदि में कर सकती है जो सदाचार और धर्म है ।

३–अस्तेय

अस्तेय के अर्थ चोरी न करना है। किसी का धन, वस्तु आदि चुराना और रिश्वत आदि द्वारा धन लेना भी चोरी है। चोरी काम की भी होती है जो काम किसी को सौंपा जावे यदि वह उसे नहीं करता तो वह भी चोरी है। भारतवर्ष में कर्मचारियों को देखने के लिये उनके ऊपर एक मिस्त्री रखना पड़ता है अन्यथा विना देखे वह काम न करने की चोरी करते हैं। संसार में जिस किसी को जो काम सौंपा जावे उसे सत्यता से करना और कामचोर न होना भी अस्तेय है। सब विभागों में वह मनुष्य धार्मिक है जो चाहे कोई देखे चाहे न देखे अपना काम सत्यता से करता है। प्रत्येक धर्म चोरी को पाप मानता है। यदि सब धर्म अस्तेय का प्रचार करें तो रिश्वत लेना काम चोरहोना तथा असत्यता संसार से उठ जावे और सब कार्य्य सुचारु रूप से होने लगें।

४–ब्रह्मचर्य्य

ब्रह्म के अर्थ वेद अर्थात् ज्ञान और ईश्वर के हैं। ब्रह्मचर्य्य का अर्थ वीर्य्य की रक्षा करना तथा स्त्री सम्बन्ध न करने के भी हैं और ब्रह्मचर्य्य का अर्थ विद्याग्रहण करने के भी हैं। अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़कर और किसी स्त्री से सम्बन्ध करना सब धर्म पाप मानते हैं जो पुरुष विना विवाह

के स्त्री प्रसंग करता है वह व्यभिचारी, पापी तथा महानीच सब धर्मों में माना जाता है। वैदिक धर्म में केवल सन्तान के लिए ही अपनी स्त्री से प्रसंग करने की आज्ञा है, जब सन्तान की आवश्यकता न हो तो संयम से स्त्री पुरुष रहें और जो पुरुष केवल सन्तान के लिये ही स्त्री प्रसंग करता है वह ब्रह्मचारी के समान माना जाता है। ब्रह्मचर्य्य का अर्थ ज्ञान ग्रहण करना भी है। सब धर्म मानते हैं कि मनुष्य को ज्ञानवान होना चाहिये। संसार में और कोई जीव पढ़ लिख नहीं सकता केवल मनुष्य ही ज्ञानी हो सकता है। सब धर्मों के मनुष्य विद्या का प्रचार करें और सदाचारी रहें तभी संसार में शान्ति रह सकती है। वीर्य्य की रक्षा से शरीर की पुष्टि होती है। युवा अवस्था तक प्रत्येक मनुष्य के जीवन को सुखी बनाने के लिये वीर्य्य रक्षा अनिवार्य्य है। लड़के लड़की ब्रह्मचर्य्य अनिवार्य्यरूप से धारण करें जब तक कि वे युवा न हो जावें ताकि उनके सब अङ्ग हड्डी आदि पूर्णरूप से बढ़कर विकसित हो जावें, तभी विवाह होना चाहिये। कुछ धर्मों में बचपन में विवाह करने की आज्ञा है परन्तु धर्म के मुख्य अङ्ग सत्य और डाक्टरों की सम्मति के विरुद्ध होने से वह नहीं मानना चाहिये। वह केवल रूढ़ियों के आधार पर धर्म का अङ्ग बन गई है जो विद्या और सत्य के विरुद्ध होने

है और सरलता स्वयं आजाती है। पहले वह स्वयं चरखा कातते थे तब दूसरों को चरखा कातने का उपदेश देते थे। ईसामसीह और मोहम्मद साहब भी सदैव सरलता का जीवन व्यतीत करते थे। जो मनुष्य भोगों में पड़ा रहेगा और कृत्रिम जीवन व्यतीत करेगा वह सदाचार का आचरण नहीं कर सकता। भोगों को त्यागकर सरलता का जीवन व्यतीत करना तभी सम्भव है जब मनुष्य अपनी आत्मा की दुष्ट इच्छाओं का त्याग करना सीखे और दूसरों के लिये कष्ट उठाना सीखे। सब धर्म त्याग का उपदेश देते हैं और निर्धनों तथा दु:खी मनुष्यों के लिये धन त्यागना बड़ा महान धर्म मानते हैं। यदि धनी त्याग सीख जावें और धन को संसार के हित' के लिये व्यय करें तो संसार सुखमय बन जावे क्योंकि संसार में सब झगड़ों का कारण स्वार्थ की भावना है। वैदिक धर्म में तो धर्म प्रचारकों के लिये अपरिग्रह अनिवार्य है। इसलिये वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम बने हैं। त्याग के अर्थ यह नहीं है कि संसार छोड़ कर बन में जावे या वैरागी योगी हो जावे। त्याग का अर्थ है कि संसार में रहता हुआ आवश्यकता के अनुसार भोग भोगे और त्यागभाव से सब काम करे किसी वस्तु में बहुत असक्ति न रक्खे।

भगवान् कृष्ण गीता में उपदेश देते हैं कि—

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागमाहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

(भगवद्गीता अ० १८ श्लोक २)

काम्य अर्थात् कामना से किये कर्मों को छोड़ने को विद्वान् लोग सन्यास कहते हैं और सब कर्मों के फल के त्यागने को बुद्धिमान् लोग त्याग कहते हैं। भगवान् कृष्ण निष्काम कर्म करने का उपदेश देते हैं कि मनुष्य को कर्मों के फल की आशा त्याग देना चाहिए। यह वास्तविक त्याग है केवल अपना कर्तव्य समझ कर सब कार्य्य करना चाहिए—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(यजुर्वेद ४० अ० १ मं०)

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का जो ईशावास्य उपनिषद् कहलाता है पहला मन्त्र सब मनुष्यों को उपदेश देता है कि समस्त संसार को त्यागभाव से भोगो। मन्त्र का अर्थ यह है—"यह सब परमेश्वर से घिरा हुआ है जो कुछ संसार में है और यह सब चलायमान है (अर्थात् स्थिर नहीं है)। प्रत्येक वस्तु का काल और अवस्था सदैव बदलती रहती है और संसार का अर्थ ही है कि जो सदैव चलता रहता है एक सा कदापि नहीं रह

से नहीं मानना चाहिए। बचपन में विवाह करना बहुत हानिकर है, बच्चों के बच्चे पैदा होने से दोनों दुर्बल होकर दुःखी होते हैं

ब्रह्मचर्य्य का अर्थ ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के भी है। यह सब धर्म मानते ही हैं कि ईश्वर का ज्ञान प्राप्त किया जावे और मनुष्य ब्रह्मज्ञानी बनें। ब्रह्मचर्य्य स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य्य है और स्वास्थ्य संसार में बहुत बड़ा सुख है, जैसा कहा गया है, "पहला सुख नीरोग हो काया, दूजा सुख घर में कुछ माया, तीजा सुख स्त्री हो सुशीला, चौथा सुख पुत्र आज्ञाकारी।"

५—अपरिग्रह

भोगों के त्यागने का नाम अपरिग्रह है। प्रत्येक धर्म में त्याग की सब से अधिक महिमा है इसलिये सब धर्म दान देने तथा भिक्षा देने आदि की आज्ञा देते हैं। जितना मनुष्य संसार के भोगों में लिप्त रहता है उतना ही ईश्वर से परे रहता है और जितना त्याग करता है उतना ही उसकी आत्मा बड़ी होती है और वह उतनी ही आत्मिक उन्नति करता है। एक महात्मा और अन्य लोगों में यही भेद है कि महात्मा त्यागी है अन्य लोग अपने सुखों को त्याग नहीं सकते हैं। सब धर्मों के प्रवर्तक सरलता का जीवन व्यतीत करते थे। यह स्वाभाविक है कि मनुष्य

जितना ईश्वर का भक्त अधिक होगा उसको उतना ही सांसारिक सुखों से वैराग्य अधिक होगा और वह उतना ही त्यागी होगा।

महात्मा गान्धी ईश्वर के बड़े भक्त थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मनुष्य एकान्त में बैठ कर अपने अन्त.करण पर ध्यान लगाकर ईश्वर से ज्ञान ग्रहण कर सकता है और अपना अन्धकार दूर कर सकता है। इसीलिये सप्ताह में एक दिन वह मौन रहते थे। जितना जिसका अन्त.करण सत्य आचरण से शुद्ध होगा उतना स्पष्ट ज्ञान ईश्वर से उसे मिलेगा। कृत्रिम जीवन सदाचार के विरुद्ध है। यही कारण है कि संसार के सब धर्मों के प्रवर्तकों ने सरलता का जीवन व्यतीत किया। महात्मा गान्धी केवल एक लंगोटी बांधते थे क्योंकि वह यह सहन नहीं कर सकते थे कि भारतवर्षके अधिकांश मनुष्य निर्धन रहें और वस्त्र खरीद न सकें और वह स्वयं वस्त्र पहनें। इसलिये जब तक सब लोगों को वस्त्र न मिले वह वस्त्रों का सुख नहीं उठाना चाहते थे और सब मनुष्यों में अपरिग्रह अर्थात् सरलता के प्रचार के लिये उन्होंने खद्दर का प्रचार किया जिससे सदाचार की बहुत सी बातों का एक साथ प्रचार हो। खद्दर से निर्धन

है और सरलता स्वयं आजाती है। पहले वह स्वयं चरखा कातते थे तब दूसरों को चरखा कातने का उपदेश देते थे। ईसामसीह और मोहम्मद साहब भी सदैव सरलता का जीवन व्यतीत करते थे। जो मनुष्य भोगों में पड़ा रहेगा और कृत्रिम जीवन व्यतीत करेगा वह सदाचार का आचरण नहीं कर सकता। भोगों को त्यागकर सरलता का जीवन व्यतीत करना तभी सम्भव है जब मनुष्य अपनी आत्मा की दुष्ट इच्छाओं का त्याग करना सीखे और दूसरों के लिये कष्ट उठाना सीखे। सब धर्म त्याग का उपदेश देते हैं और निर्धनों तथा दुःखी मनुष्यों के लिये धन त्यागना बड़ा महान धर्म मानते हैं। यदि धनी त्याग सीख जावें और धन को संसार के हित के लिये व्यय करें तो संसार सुखमय बन जावे क्योंकि संसार में सब झगड़ों का कारण स्वार्थ की भावना है। वैदिक धर्म में तो धर्म प्रचारकों के लिये अपरिग्रह अनिवार्य है। इसलिये वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम बने हैं। त्याग के अर्थ यह नहीं है कि संसार छोड़ कर बन में जावे या वैरागी योगी हो जावे। त्याग का अर्थ है कि संसार में रहता हुआ आवश्यकता के अनुसार भोग भोगे और त्यागभाव से सब काम करे किसी वस्तु में बहुत असक्ति न रक्खे।

भगवान् कृष्ण गीता में उपदेश देते है कि—

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः ।
सर्वकर्मफलत्यागमाहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

(भगवद्गीता अ० १८ श्लोक २)

काम्य अर्थात् कामना से किये कर्मों को छोड़ने को विद्वान् लोग सन्यास कहते हैं और सब कर्मों के फल के त्यागने को बुद्धिमान् लोग त्याग कहते हैं। भगवान् कृष्ण निष्काम कर्म करने का उपदेश देते हैं कि मनुष्य को कर्मों के फल की आशा त्याग देना चाहिए। यह वास्तविक त्याग है केवल अपना कर्तव्य समझ कर सब कार्य्य करना चाहिए —

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

(यजुर्वेद ४० अ० १ मं०)

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का जो ईशावास्य उपनिषद् कहलाता है पहला मन्त्र सब मनुष्यों को उपदेश देता है कि समस्त संसार को त्यागभाव से भोगो। मन्त्र का अर्थ यह है— "यह सब परमेश्वर से घिरा हुआ है जो कुछ संसार में है और यह सब चलायमान है (अर्थात् स्थिर नहीं है)। प्रत्येक वस्तु का काल और अवस्था सदैव बदलती रहती है और संसार का अर्थ ही है कि जो सदैव चलता रहता है एक सा कदापि नहीं रह

सकता जैसे बचपन,जवानी,बुढ़ापा और मृत्यु प्रत्येक की निश्चित है,इसीलिये संसार का सब कुछ जगत् अर्थात् चलायमान कहा गया है) इसलिये (हे मनुष्यों) त्याग भाव से संसार को भोगो (यह नहीं कि संसार छोड़ कर सन्यासी या योगी हो जाओ) किन्तु संसार को भोगो परन्तु त्याग भाव से अर्थात् आसक्ति मत रक्खो। जब आसक्ति (Attachmen) नहीं होगी तो मनुष्य कर्तव्य पालन करेगा और कोई अशान्ति नहीं होगी जैसे त्याग भाव से भोजन करना जितनी आवश्यकता है उतना ही भोजन करना है, परन्तु अच्छे भोजन के लिए आसक्ति होने से आवश्यकता से अधिक भोजन किया जाता है जो हानिकर होता है और रोग उत्पन्न करता है ऐसेही सन्तान उत्पत्ति के लिये स्त्री प्रसंग त्यागभाव से कहा जाता है परन्तु विषय-वासना के लिये स्त्री प्रसंग आसक्ति है जो स्वास्थ्य को हानिकर है। त्यागभाव से धन का भोग करने वाला कभी धन नहीं चुरा सकता न किसी वस्तु के लिये व्याकुल हो सकता है। पुत्र, स्त्री, पुरुष धन आदि को जो त्याग भाव से भोगता है और आसक्ति नहीं रखता वह दैवी विपत्ति पड़ने पर उनके नाश होने पर दुःखी नहीं होता।

इस मन्त्र के अन्त में लिखा है (हे मनुष्यों) मत लोभ करो क्योंकि धन परमात्मा का है। इस का अभिप्राय यह है

कि सब वस्तुएँ परमात्मा की है जब तक उसकी इच्छा है मनुष्य भोगता है और जब नहीं तो वह वस्तु नष्ट हो जाती है। मनुष्य को लोभ नहीं करना चाहिये क्योंकि सब वस्तुएँ पराई अर्थात् परमेश्वर की हैं। पराई वस्तु के नष्ट होने पर दुःख कैसा दुःख तो अपनी वस्तु के नाश पर होता है। सब धर्म त्याग को बड़ा धर्म मानते हैं और जो त्यागी मनुष्य होता है जिसमें स्वार्थ न हो उसी को पूज्य और नेता मानते हैं। सब मिलकर त्याग का प्रचार करें तो संसार शान्ति और सुख स्थायी रूप से हो सकता है। जो त्यागी होता है वह निर्भय होता है और सत्यादि सदाचार रूपी धर्म के लिये अपने शरीर को भी हर्ष से त्याग देता है और परोपकार के सब कार्य्य करता है।

नियम

योगशास्त्र मे यम के अतिरिक्त नियम भी बतलाये गये हैं जो सब धर्मों के मुख्य अंग हैं।

१—शौच

शौच के अर्थ पवित्रता व सफाई के हैं। अन्तःकरण व हृदय की शुद्धता और शरीर तथा स्थान की शुद्धता सब धर्म मानते हैं। वैदिक धर्मावलम्बी प्रतिदिन स्नान करता है। और धर्म वाले वैसे ही शुद्धता रखते हैं, निवास स्थान की सफाई तो अनिवार्य है, क्योंकि उसका प्रभाव पड़ोस में रहने वालों

पर पड़ता है। यदि सब धर्म वाले ग्रामों और गन्दे मोहल्लों में मिल कर सफाई का प्रबन्ध करें तो सबका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। सफाई मृतक संस्कार का सार है जहाँ लकड़ी नहीं मिल सकती थी, जैसे अरबादि देशों में वहाँ मृत शरीर गाड़ने की प्रथा चली और धर्म का गौण अङ्ग बन गई। जहाँ लकड़ी, घी आदि अधिकता से मिलता था वहाँ अग्नि में घी डाल कर मृत शरीर के जलाने का संस्कार प्रचलित हुआ। जर्मनी आदि देशों में बहुत पढ़े लिखे लोग प्रबन्ध कर जाते हैं कि उनका शरीर बिजली के इञ्जन द्वारा एक क्षण में जला दिया जावे, क्योंकि जलाने से सबसे अधिक सफाई होती है। हर एक के धर्म के गौण अंग के लिए सहिष्णुता चाहिए।

२—सन्तोष

सन्तोष के अर्थ अच्छी तरह प्रसन्न रहने तथा जो कुछ पास है उससे प्रसन्न रहने के हैं। चाहे जितनी विपत्ति आवे मनुष्य को व्याकुल नहीं होना चाहिये, प्रसन्नता से अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। सब धर्म प्रसन्नता के हेतु उत्सव मनाते हैं ताकि मिल कर सब प्रसन्न रहें। भगवान् श्रीकृष्ण महाभारत में सदैव प्रसन्न रहते थे जब और लोग विपत्ति पड़ने पर घबड़ा उठते थे। "धैर्यं हि महतां धनम्"।

र्य बड़े आदमियों का धन है, विपत्ति में वे धैर्य कभी नहीं ोड़ते।

३–तप

तप कष्ट उठाने और परिश्रम करने को कहते हैं। सब नुष्य अपने कर्तव्य पालन करने में कष्ट उठावें, और रिश्रम करें। भगवद्‌गीता में तप तीन प्रकार का कहा है— ारीरिक तप, वाचिक तप और मानसिक तप।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
(भगवद्‌गीता १७ अ० १४ श्लोक)

"देव, ब्राह्मण (अर्थात जो ब्रह्म का ज्ञानी हो) गुरु, बुद्धिमान आदमियों का पूजन अर्थात् सत्कार, सफाई और सीधापन जिसमें कपट न हो, ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य्य की रक्षा और ब्रह्मज्ञान ग्रहण करना और अहिंसा अर्थात् किसी को कष्ट न देना व मार न डालना शारीरिक तप है। संक्षेप में शरीर पर अधिकार रखना कुकर्म करने से शरीर को रोकना और परिश्रम से अच्छे कार्य्य करना शरीर का तप है। वाणी का तप यह है कि बाणी पर अधिकार रखना किसी को दुःख देने वाले वाक्य न कहना, सत्य

तथा हितकारी और प्रिय वाक्य मुख से निकालना, अच्छे ग्रन्थ पढ़ना। भगवद्गीता कहता है :—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं चयत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वांमयं तप उच्यते॥
(भगवद्गीता १७ अ० १५० श्लोक)

"वाणी का तप यह कहा जाता है कि किसी को दुःखी न करने वाला, सत्य, प्रिय और हितकारी वाक्य सदैव कहा जावे और धार्मिक ग्रन्थों के स्वयं पढ़ने का अभ्यास किया जावे"।

एक सूक्ति है कि—"वशीकरण एक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर"। यह तप है कि अपनी वाणी से असत्य व किसी की बुराई और दूसरों को दुःखदायी वाक्य न निकाले। मीठी बोली से सब कार्य्य अच्छे प्रकार सुगमता से हो जाते हैं।

मन का तप यह है कि 'मन में बुरे विचार न आने पावें। मन में मैल न रहे और मन सदैव प्रसन्न रहे' यह मन का तप है। भगवद्गीता में लिखा है कि—

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते॥
(भगवद्गीता १७ अ० १६ श्लोक)

"मन प्रसन्न रखना, मन में शान्ति रखना, मौन रहना और आत्मा पर पूर्ण अधिकार अर्थात् रोक थाम रखना और विचार तथा भावनाओं की पवित्रता अर्थात् अच्छे शुद्ध विचार रखना मन का तप कहलाता है। सब धर्मों का सार यह है कि मनुष्यों के विचार अच्छे हों उनके मन वाणी और शरीर उनके अधिकार में रहें और वे पाप न करें। मन को मारने और शरीर को कष्ट उठाने का अभ्यास कराने के लिये भिन्न २ धर्मों ने उपवास, रोजा आदि नियत किये हैं जो धर्म के गौण अङ्ग है। महात्मा गान्धी अनशन करने का कष्ट आत्म-शुद्धि और दूसरों के सुधारने के लिये करते थे। यदि आत्मा से कोई भूल हो गई हो तो आत्मा को दण्ड देने के लिए अनशन किया जा सकता है कि जिससे आत्मा अनशन का कष्ट उठाकर दुबारा वैसी भूल न करे। दूसरे यदि दूसरे सदाचार का आचरण नहीं करते तो अपने आप कष्ट सहने को महात्मा गान्धी अनशन किया करते थे ताकि दूसरे लोग अपनी त्रुटी दूर करने के लिए विवश हों यह देखकर कि महात्मा गांधी मेरी त्रुटी के कारण स्वयं अनशन का कष्ट उठा रहे हैं।

४—स्वाध्याय

स्वाध्याय के अर्थ स्वयं पढ़ने के हैं। सब धर्म यह मानते

हैं कि मनुष्य अच्छे धर्म ग्रन्थ स्वयं पढ़े। प्रतिदिन मनुष्य को थोड़े समय शिक्षा देने वाले, सदाचार सिखाने वाले, तथा ईश्वर भक्ति उत्पन्न करने वाले, धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। बिना धर्म ग्रन्थ पढ़े अथवा सुने आत्मा को धर्म रूप भोजन न मिलने से आत्मा की उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए सदाचारी होने के लिए सत्संग बहुत आवश्यक है ताकि धार्मिक ग्रन्थों से अथवा सदाचारी महात्माओं से सत्य धार्मिक विचार सीखकर मनुष्य अपनी उन्नति कर सके।

५–ईश्वर प्रणिधान

ईश्वर प्रणिधान अपना कर्तव्य करके फल ईश्वर पर छोड़ने को कहते हैं क्यों कि काम करना मनुष्य के अधीन है और बहुत अवस्थाओं में फल देना ईश्वर के अधीन है। सब कार्य करके उनका फल ईश्वर पर छोड़ने से मनुष्य को सदैव शान्ति तथा सुख मिलता है और बड़ी से बड़ी विपत्ति में उसके सहन करने की शक्ति तथा धैर्य मिलता है। जैसे किसी अपने सम्बन्धी रोगी की यथाशक्ति चिकित्सा करके उसके स्वस्थ होने का फल ईश्वर पर छोड़ना चाहिये। ऐसे ही प्रत्येक कार्य में अपना कर्तव्य करके फल ईश्वर पर छोड़ना चाहिए। सब धर्म ईश्वर पर विश्वास करते हैं। कर्तव्य करके ईश्वर पर फल छोड़ने से आत्मविश्वास और सन्तोष और शान्ति प्राप्त होती है।

पञ्चम पाठ

ईश्वर सिद्धि

ईश्वर पर अटल विश्वास मनुष्य को पक्का सदाचारी बनाता है पहले ईश्वर का होना सिद्ध होना चाहिये। तब उसमें मनुष्य का दृढ़ विश्वास हो सकता है तभी मनुष्य अपने सब कार्य्यों का फल ईश्वर पर छोड़ सकता है।

प्रत्येक वस्तु की सिद्धि में हमें पूर्ण निश्चय उस समय होता है जब हम अपनी इन्द्रियों से उसे देखते, सुनते व छूते हैं। तब हम निस्सन्देह कहते हैं कि यह वस्तु है। इसी प्रकार यदि ईश्वर को भी प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध कर दिया जावे तो हमारा अटल विश्वास ईश्वर के होने पर हो जावे। वेदान्त शास्त्र का एक सिद्धान्त है कि "गुण गुणिनोरभेद वशात्" गुण और गुणों के धारण करने वाला एक ही वस्तु है वास्तव में हम सब का भ्रम है कि हम गुणों को गुणी अर्थात् गुणों के धारण करने वाले से पृथक वस्तु समझते हैं।

आप कोई वस्तु लें और विचारें कि यह क्या है, तो आपको गुण ही गुण ज्ञात होंगे क्योंकि उन गुणों का धारण करने वाला कोई है ही नहीं। जैसे एक फूल को लो उसमें क्या प्रत्यक्ष होता है। उसका आकार अर्थात् फूल की लम्बाई चौड़ाई तथा मोटाई का गुण, उसके रंग का गुण, छूने से उसकी कोमलता या कठोरता का गुण और उसकी सुगन्धि का गुण। यदि फूल के इन सब गुणों के समूह को पृथक करलो तो फिर कोई वस्तु नहीं रहती जिसे फूल कहा जाये। वास्तविकता यह है कि फूल केवल इन गुणों के समूह का नाम है और कोई अन्य वस्तु नहीं। ऐसे ही किसी मनुष्य को लीजिए जैसे 'राम', हम राम किसको कहते हैं? एक आकार का गुण, बोलने का गुण, चलने का गुण, चेतन शक्ति रखने का गुण, इत्यादि गुणों के समूह को हम राम कहते हैं। यदि हम इन गुणों के समूह को अलग करलें तो कोई ऐसी वस्तु नहीं रहती जिसे हम राम कहें। अतः तत्व यह निकला कि राम केवल कुछ गुणों का समूह है जिनको हम प्रत्यक्ष करते हैं तभी हम कहते हैं कि राम है।

जिस प्रकार संसार की प्रत्येक वस्तु केवल गुणों का समूह है जो प्रत्यक्ष किये जाते हैं ठीक इसी प्रकार ईश्वर भी एक गुणों का समूह है जिनको हम प्रत्यक्ष कर सकते हैं। ईश्वर

ा प्रथम गुण सत् है अर्थात वह है और वह एक है। समस्त ंसार पर दृष्टि डालने से हमको प्रत्यक्ष होता है कि प्राकृतिक नेयम सब संसार को चला रहे हैं जो मनुष्य की शक्ति के ाहर हैं, जैसे जीवों तथा वृक्षादिकों का बच्चा होना, बढ़ना और ुराना हो कर नाश होना। यदि मनुष्य चाहे कि मैं बुड्ढा कभी न ोऊ, सदैव युवा र । मैं 'कभी न मरूं तो यह कदापि हीं हो सकता। इस से सिद्ध होता हैं कि कुछ नियम हैं जेनमें सब संसार बंधा हुआ है, और जो मनुष्य की शक्ति ो बाहर हैं। यह नियम सब संसार में प्रत्येक देश व स्थान पर एक ही प्रकार के हैं। इससे सिद्ध हुआ कि एक ही ईश्वर है जो ाकृतिक नियम स्वरूप है अर्थात् यह नियम ही उसका ्वरूप हैं। बड़े से बड़े नक्षत्र सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि से लेकर कीटाणु तक को प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलना ड़ता है। यह ईश्वर का गुण सबको सदैव प्रत्यक्ष होता है और सब स्थानों में है। इससे सिद्ध होता है कि यदि प्राकृतिक नियमों का नाम ईश्वर है तो वह अवश्य है और एक जैसा है अर्थात् एक है।

ईश्वर केवल सत् ही नहीं है किन्तु चित् भी है अर्थात् चेतन वस्तु है। किसी वस्तु का चेतन गुण उसके बुद्धिपूर्वक काम से सिद्ध होता है अर्थात् काम का कोई प्रयोजन सिद्ध

हो। वैसे अचेतन पानी भी तो चलता है अचेतन वायु भी चलती है चेतनता प्रयोजन से सिद्ध होती है। जड़, मिट्टी, जल आदि में कोई बुद्धि नहीं और न उनके कार्य्य किसी प्रयोजन से होते हैं। यदि यह कहा जावे कि संसार के प्राकृतिक नियम प्रकृति के गुण होने के कारण सहसा नियम पूर्वक काम करने लगे तो उनमें कोई प्रयोजन या उद्देश नहीं होना चाहिए क्यों कि उद्देश तथा प्रयोजन बुद्धि वाला चेतन ही नियत कर सकता है और उस उद्देश और प्रयोजन के लिए कार्य्य करता है। उदाहरण के लिए एक कीड़ा लीजिये जिसने कोई पन्ना ऐसा काटा कि राम का नाम बन गया। एक दो अक्षर अकस्मात् बन सकते हैं परन्तु यदि कीड़ा पूरी रामायण के कुल शब्द और चौपाइयां काट कर बनादे तो मानना पड़ेगा कि कीड़ा बुद्धिमान पढ़ा लिखा है अन्यथा कुल रामायण कैसे काट कर बना सका। इसी प्रकार यदि यह प्रत्यक्ष दिखला दिया जावे कि प्राकृतिक सम्पूर्ण नियमों में एक प्रयोजन उद्देश तथा बुद्धि पूर्वक क्रम है तो मानना पड़ेगा कि एक चेतन शक्ति है जो नियमों के स्वरूप में संसार को चला रही है और सबको अपने अधिकार में किये हुये है और किसी उद्देश और प्रयोजन से सब कार्य्य करती है। बालक की उत्पत्ति तक माता के गर्भ में बच्चों का पालन पोषण नाभि नार के द्वारा रक्त से होता

है परन्तु जैसे बालक उत्पन्न होता है उसके पीने को दूध पहले से माता के स्तनों में तैयार कर दिया जाता है। यह चेतन वस्तु जानती है कि बच्चों को उत्पन्न होकर रक्त तो खाने को मिल नहीं सकता तो क्या खावेगा ? इसलिये पहले से उसके लिये दूध तैयार कर दिया। उसके बाद माता का दूध अवश्य समाप्त होगा तो बच्चा अन्न कैसे खावेगा इसलिये बाद को उसके दांत निकल आते हैं।

ऐसे ही मनुष्य की बनावट पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि अँगुलियों आदि के जोड़ हाथ पैर मोड़ने के लिये अलग से अस्थियाँ रख कर बनाये गये हैं। आँख की रक्षा को पलक बनाये हैं। यह सब बातें प्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट सिद्ध कर रही हैं कि कोई चेतन शक्ति है जो बुद्धि पूर्वक किसी प्रयोजन के लिए प्राकृतिक नियमों का प्रयोग करती है। प्रत्येक वस्तु में बुद्धि पूर्वक नियमों का प्रयोग प्रत्यक्ष हो रहा है। इससे निस्सन्देह स्पष्ट सिद्ध है कि प्राकृतिक नियम स्वरूप चेतन शक्ति सब संसार को चला रही है जिसे ईश्वर कहते हैं, जो सत् और चित् अर्थात् चेतन है।

केवल यही नहीं, कुछ सदाचार के नियम भी प्रकृति में देखे जाते हैं। जैसे मांसाहारी जीवों की माता अपने बच्चों को नहीं खाती। क्योंकि यदि माता ही बच्चों को खाने लगे

अर्थः-१—तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है उसका फ
पाने में तेरा अधिकार नहीं है, इसलिये कर्म का फल तेरे क
करने का प्रयोजन नहीं होना चाहिए (अर्थात् अपना कर्त
पालने के हेतु ही तू कर्म कर और इस अभिप्राय से कर्म म
कर कि मुझको उसका फल मिले) और अकर्मण्यता अर्था
अपना कर्तव्य न करने में तेरी आसक्ति नहीं होना चाहि
(अर्थात् अपाहिज मत बन, कर्म सदैव करता रह)।

२—हे अर्जुन ! योग में स्थित होकर और आसक्ति छो
कर कर्म कर और सफलता तथा असफलता में एकसा रहने क
योग कहते हैं।

३—जो कर्म के फल पर आश्रित न रह कर केवल इस
लिये कर्म करता है कि यह मेरा कर्तव्य है, वह सन्यासी है
वह योगी है, परन्तु वह सन्यासी नहीं है जिसने अग्नि
होत्रादि छोड़ कर सन्यास लिया है और वह योगी नहीं है
जिसने संसार के कामों को छोड दिया है और योगी बना है

श्री कृष्णजी उस मनुष्य को योगी और सन्यासी कहते
जो अपना कर्तव्य समझ कर फल की आशा छोड कर्त
व्य पालन करता है। योग किसी कर्म में सफलता अथवा
असफलता मिलने पर एक सा रहने को कहते हैं। इसीसे
मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है उसे समाधि लगाने की आवश्यकता

ीं पड़ती। यदि संसार के कुल मनुष्य चाहें जिस विभाग
ो अपना कर्तव्य बिना फल की आशा के पालन करें तो
स्त संसार स्वर्गधाम बन जाय और आनन्दमय होजाय।
ष्काम कर्म करने से ही संसार में वास्तविक स्थायी शान्ति
सकती है। उदाहरण के लिये आप किसी विभाग को लीजिये।
क्षा विभाग में उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण का विचार छोड़ कर यदि
द्यार्थी केवल अपना कर्तव्य समझ कर पढ़ता है तो वह सदैव
नन्द में रहता है। फल तो ईश्वर के अधीन है उसके लिये
न्ता करना व्यर्थ है। ऐसे ही पुलिस विभाग में यदि अपना
व्य समझ कर बिना आसक्ति अर्थात् लगाव के सत्य रिपोर्ट
जावे और बिना फल की अपेक्षा किये हुये अपना कर्तव्य
लन किया जावे, चाहे उसके पालन करने में प्राण तक देना
े तो यह निष्काम कर्तव्य करना योग और सन्यास से बढ़कर
स का फल देने वाला है। एक अनपढ़ और निर्धन मनुष्य
पना कर्तव्य पालन करता हुआ निष्काम कर्म करने से वही
त पाता है जो ब्रह्मज्ञानी योगी या सन्यासी ज्ञान, योग
थवा सन्यास से पाता है। आगे चलकर कृष्ण जी स्पष्ट गीता
कहते हैं कि अपना कर्तव्य पालन करना ही ईश्वर पूजा है
ौर इसी से मोक्ष मिलता है।

तो वह जाति पैदा नहीं हो सकती और न वह जाति संसार में रह सकती है। चेतन शक्ति ने ही बुद्धि-पूर्वक यह नियम बनाया है कि माता अपने बच्चों को न खावे, ताकि जाति जीवित रहे और समाप्त न हो जावे। इन सब बातों से स्पष्ट है कि ईश्वर है। उसका स्वरूप सत्-चित्-आनन्द कहा गया है। आनन्द का अनुभव योगी लोग केवल कर सकते हैं और सत् चित् ईश्वर के गुण सबको प्रत्यक्ष होते हैं। इससे यह निस्सन्देह सिद्ध होगया कि ईश्वर है, जो हमारे सब कर्मों को देखता है, जिससे कुछ छिपा नहीं है और जिसके नियम चक्र से ही सब कुछ होता है और मनुष्यों को कर्मों का फल मिलता है।

जब ईश्वर है तब हम सब को महात्मा गांधी के अनुसार अपने अन्त:करण द्वारा ईश्वर से ठीक मार्ग जानने का प्रयत्न करना चाहिये। मौन होकर ध्यान करने से ईश्वर की ओर से अन्तःकरण में सब समस्याओं की पूर्ति के लिये स्पष्ट सहायता मिलती है। यदि हम ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रक्खें तो हम निर्भय सदाचारी और सदैव शान्त, त्यागी और आत्म विश्वासी होजावेंगे जो सब सफलताओं की कुञ्जी है।

षष्ठ पाठ
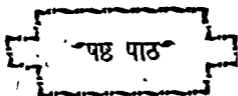
ईश्वर प्रणिधान की महत्ता

भगवद्गीता में सदाचार का उपदेश

यदि मनुष्य कर्म स्वयम् करे परन्तु फल ईश्वर पर छोड़ दे उसकी चिंता नष्ट हो जाती है और उसमें शान्ति रहती है। श्री कृष्णचन्द्र भगवान् अपनी भगवद्गीता में इस विषय पर कहते हैं कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥१॥

(भग० २ अ० ४७ श्लोक)

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥२॥

(भग० २ अ० ४८ श्लोक)

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥३॥

(भग० ६ अ० १ श्लोक)

अर्थः–१—तेरा अधिकार केवल कर्म करने में है उसका फ
पाने में तेरा अधिकार नहीं है, इसलिये कर्म का फल तेरे क
करने का प्रयोजन नहीं होना चाहिए (अर्थात् अपना कर्त
पालने के हेतु ही तू कर्म कर और इस अभिप्राय से कर्म न
कर कि मुझको उसका फल मिले) और अकर्मण्यता अर्थ
अपना कर्तव्य न करने में तेरी आसक्ति नहीं होना चाहि
(अर्थात् अपाहिज मत बन, कर्म सदैव करता रह)।

२—हे अर्जुन ! योग में स्थित होकर और आसक्ति छो
कर कर्म कर और सफलता तथा असफलता में एकसा रहने
योग कहते हैं।

३—जो कर्म के फल पर आश्रित न रह कर केवल इ
लिये कर्म करता है कि यह मेरा कर्तव्य है, वह सन्यासी
वह योगी है, परन्तु वह सन्यासी नहीं है जिसने अग्नि
होत्रादि छोड़ कर सन्यास लिया है और वह योगी नहीं
जिसने संसार के कामों को छोड़ दिया है और योगी बना है

श्री कृष्णजी उस मनुष्य को योगी और सन्यासी कह
हैं जो अपना कर्तव्य समझ कर फल की आशा छोड़ क
कर्तव्य पालन करता है। योग किसी कर्म में सफलता अथव
असफलता मिलने पर एक सा रहने को कहते हैं। इसीसे
मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है उसे समाधि लगाने की आवश्यकत

ड़ती। यदि संसार के कुल मनुष्य चाहें जिस विभाग
अपना कर्तव्य बिना फल की आशा के पालन करें तो
संसार स्वर्गधाम बन जाय और आनन्दमय होजाय।
म कर्म करने से ही संसार में वास्तविक स्थायी शान्ति
कती है। उदाहरण के लिये आप किसी विभाग को लीजिये।
विभाग में उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण का विचार छोड़ कर यदि
र्थी केवल अपना कर्तव्य समझ कर पढ़ता है तो वह सदैव
द में रहता है। फल तो ईश्वर के अधीन है उसके लिये
करना व्यर्थ है। ऐसे ही पुलिस विभाग में यदि अपना
समझ कर बिना आसक्ति अर्थात् लगाव के सत्य रिपोर्ट
वे और बिना फल की अपेक्षा किये हुये अपना कर्तव्य
किया जावे, चाहे उसके पालन करने में प्राण तक देना
तो यह निष्काम कर्तव्य करना योग और सन्यास से बढ़कर
का फल देने वाला है। एक अनपढ़ और निर्धन मनुष्य
कर्तव्य पालन करता हुआ निष्काम कर्म करने से वही
ता है जो ब्रह्मज्ञानी योगी या सन्यासी ज्ञान, योग
ा सन्यास से पाता है। आगे चलकर कृष्ण जी स्पष्ट गीता
ते हैं कि अपना कर्तव्य पालन करना ही ईश्वर पूजा है
इसी से मोक्ष मिलता है।

यतःप्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणातमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(भगवद्गीता १८ अ० ४६ श्लोक)

"जिससे कुल प्राणी और अस्तित्व रखने वाले पदार्थ उत्पन्न हुये और विद्यमान हैं और जो इस सब संसार में व्यापक है और जिसने इस सब को फैलाया है उसको अपना कर्तव्य पालन करने रूप पूजने पर मनुष्य मोक्ष और सफलता को प्राप्त होता है।"

श्रीकृष्ण जी कहते हैं—

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि॥

(भगवद्गीता ३ अ० २० श्लोक)

"जनकादि (राजा जो राज्य करते थे) लोग अपने कर्तव्य करने से ही मोक्ष रूपी सफलता को प्राप्त हुये। इसलिये हे अर्जुन संसार के हित पर दृष्टि रखते हुए अपना कर्तव्य पालन कर"। जनक के लिये एक कथा प्रचलित है कि एक योगी जनक के पास आये और उनसे कहने लगे कि हे जनकराज! तुम ब्रह्मज्ञानी और जीवनमुक्त कैसे हो? तुम तो संसार के काम काज, तथा राज्य के झगड़ों में दिन रात पड़े रहते हो। बिना संसार छोड़े और समाधि लगाये कहीं मुक्ति मिल

ती है। राजा जनक ने आज्ञा दी इन योगीराज के शिर
एक दीपक तेल से भरा हुआ रक्खो और सब जनकपुरी
इनको घुमाओ और दो मनुष्य नङ्गी खड्गें लेकर इनके इधर,
र साथ रहें और यदि दीपकका तेल गिरे तो इनकी गरदन उड़ा
जावे। उधर नगरी को सजाने की आज्ञा दी। योगीराज
पने शिर पर तेल से भरा दीपक रक्खे हुये कुल नगरी घूमे।
नका ध्यान दीपक में रहा कि कहीं तेल न गिरे जो गरदन खड्ग
उड़ा दी जावे। जब सब नगरी घूम चुके तब राजा जनक ने
गीराज को बुलाया और पूछा कि आपने जनकपुरी में
मते हुये क्या देखा? योगीराज बोले मेरा ध्यान दीपक के तेल
था। नेत्र खुले हुए भी मैंने कुछ नहीं देखा। जनक जी ने
हा ठीक इसी प्रकार बिना लगाव अर्थात् आसक्ति के मैं कुल
ाज कार्य्य करता हूँ और मेरा ध्यान सदैव ईश्वर में रहता
। वही फल देने वाला है मैं केवल कर्तव्य पालन करता हूँ।

यजुर्वेद के ४०, अध्याय जिसको ईशोपनिषद् भी कहते हैं
सका प्रथम मन्त्र पहले अपरिग्रह की व्याख्या में बतला आये
जिसमें वेद मनुष्यों को उपदेश देता है कि हे मनुष्यों त्याग
ाव से अर्थात् बिना लगाव के संसार को भोगो। (संसार को
छोड़ो मत) जिस भाव को गीता में ऐसी अच्छी भांति कृष्णजी
ने समझाया है कि निष्काम कर्म अर्थात् कर्तव्य केवल कर्तव्य

के विचार से करने से मनुष्य जीवन मुक्त होता है और जीवन की सफलता पाता है।

यजुर्वेद ४० अध्याय का दूसरा मंत्र भी मनुष्यों को उपदेश देता है कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥
(यजुर्वेद ४० अ० २ मंत्र)

"हे मनुष्यों! इस संसार में अपने कर्तव्य पालन करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। इस प्रकार से ही (अर्थात् जो केवल कर्तव्य के विचार से बिना फल की आशा किये कर्म करता है) उस मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होते हैं। (अर्थात् कर्मों में आसक्ति नहीं होती है) और मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होती है और किसी प्रकार से मनुष्य मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकता है। (अर्थात् निष्काम कर्तव्य पालन करने से ही मनुष्य जीवन मुक्त होता है)।" मरने के बाद नहीं, प्रत्युत जीवनकाल में ही फल की आशा छोड़ कर कर्तव्य पालन करने से आदमी मोक्ष प्राप्त करता है। संक्षेप में मनुष्य जीवन की सफलता की यह कुञ्जी है कि वह स्वयं अपना कर्तव्य करे और फल ईश्वर पर छोड़ दे। इसी को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं।

रामायण में सदाचार का उपदेश

इन्हीं सदाचार की बातों पर गोस्वामी तुलसीदास ने बहुत

सुन्दरता से अपने ग्रन्थ रामायण में लिखा है— "जिस समय श्रीरामचन्द्र विभीषण के साथ रावण के सम्मुख रणक्षेत्र में जाते हैं, उस समय विभीषण को भय होता है कि कैसे शत्रु पर विजय प्राप्त होगी ?

तुलसीदासजी लङ्काकाण्ड चौपाई १०५-१११ में कहते हैं :-

रावण रथी विरथ रघुवीरा। देखि विभीषण भयउ अधीरा॥
नाथ न रथ नहिं तनु पद त्राणा। केहि विधि जितब वीर बलवाना॥
शौर्य धैर्य जेहि रथ का चाका। सत्य शील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल विवेक दम परहित घोड़े। क्षमा दया समता रजु जोड़े॥
ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाणा॥
दान परशु बुद्धि शक्ति प्रचंडा। वर विज्ञान कठिन कोदण्डा॥
अमल अचल मन त्रोण समाना। शम यम नियम शिलीमुख नाना॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन का न कतहुं रिपु ताके॥

अर्थ —"रावण रथ पर है परन्तु राम बिना रथ के हैं। यह देख कर विभीषण अधीर हो उठा और राम से कहा—हे नाथ ! न आपके पास रथ है, न आपके तन के पैरों में जूते हैं आप इस बलवान वीर (रावण) को कैसे जीतियेगा ?

राम विभीषण से कहते हैं कि—हमारे पास ऐसा रथ है जिस रथ के वीरता और धीरज पहिये हैं, सत्य और अच्छा स्वभाव जिसका दृढ़ झण्डा (अर्थात् ध्वजपताका) है और

कि तुम हिंसा मत करो और जो कोई हिंसा करेगा उसको निर्णय का भय होगा।

21 Ye have heard that it was said by them of old time. "Thou shalt not kill and whosoever shall kill, shall be in danger of the judgment."

२२ परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई अपने भाई से बिना कारण क्रोध करता है उसको निर्णय का भय होगा।

22 But I say unto you that who-so-ever is angry with his brother without cause shall be in danger of the judgment.

२७ तुमने सुना है कि प्राचीन लोगों ने कहा था कि तुम परस्त्री गमन मत करो।

27 You have heard that it was said by them of old time—"Thou shalt not commit adultery"

२८ परन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि जो कोई स्त्री को बुरी दृष्टि से देखता है वह अपने हृदय में परस्त्री गमन कर चुका है।

28 But I say unto you that who-so-ever

looketh on a woman to lust after her hath committed adultery with her already in his heart.

३८ तुम ने सुना है कि यह कहा गया है कि आंख के बदले आंख और दाँत के बदले दाँत लेना चाहिये।

38 Ye have heard that it hath been said. "An eye for eye and a tooth for a tooth."

३६ परन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि तुम बुरे से युद्ध मत करो परन्तु जो कोई तुम को दाहिने गाल पर मारे उसके लिये दूसरा गाल कर दो।

39. But I say unto you. "That ye resist not evil: but who-so-ever shall smite thee on thy right cheek, turn to him the other also."

४० अगर कोई मनुष्य तुम्हारे ऊपर न्यायालय में अभियोग लगावे और तुम्हारा कोट लेले तो तुम उसको अपना चुगा भी ले लेने दो।

40 And if any man shall sue thee at the law and take away they coat, let him have thy cloke also.

४३ तुमने सुना है। कि यह कहा गया है कि तुम अपने पड़ोसी से प्रेम करो और अपने शत्रु से द्वेष करो।

जिसमें बल, ज्ञान और इन्द्रियों को अपने अधिकार में रखन और दूसरों का हित करना, यह चार घोड़े हैं और क्षमा दय तथा सब के साथ समता, यह रस्सियाँ घोड़ों को रथ मे जोड़े हुये हैं। परमेश्वर की भक्ति उस रथ का, चतुर सारथि है (जो उसको सफलता से ले चलता है)। वैराग्य अर्थात किसी वस्तु में लगाव अर्थात् आसक्ति न होना, यही ढाल है और सन्तोष की खड्ग है। दान करना फरसा है। अच्छी बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है (जिसके प्रयोग से शत्रु नहीं बच सकता है)। श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है और शुद्ध और स्थिर मन तरकश क समान है। शान्ति तथा यम नियम अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह नाना प्रकार के बाण हैं हे मित्र विभीषण! जिसके पास ऐसा धर्म का बना हुआ रथ है उसको जीतने के लिये कहीं शत्रु ही नहीं है।

बाइबिल में सदाचार का उपदेश

क्रिश्चियन धर्म की बाइबिल में सदाचार का यह उपदेश क्राइस्ट ने पर्वत पर दिया था।

Holy Bble Pages 980 and 981 S Matthew 4 and 5, Chapter 5, (Sermon on the Mount) Commandments

अर्थ—८ धन्य हैं वे लोग जो हृदय के साफ़ (कपटहीन) हैं

क्योंकि वे ईश्वर को देखते हैं।

8 Blessed are the pure in heart for they see God.

९ धन्य हैं शान्ति करने वाले क्योंकि वे ईश्वर के पुत्र कहलावेंगे।

9 Blessed are the peace-makers for they shall be called the children of God.

१० धन्य हैं वे लोग जिनको सदाचार के कारण कष्ट दिया जाता हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उनका है।

10 Blessed are they which are persecuted for righteousness' sake for theirs is the kingdom of heaven.

१६ तुम्हारा प्रकाश मनुष्यों कें सम्मुख ऐसा चमके कि वे तुम्हारे अच्छे कामों को देख सकें और तुम्हारे पिता का यश गा सकें जो स्वर्ग में है।

16 Let your light so shine before men that they may see your good marks and glorify your father which is in heaven.

२१ तुमने सुना है कि प्राचीन समय के लोगों ने कहा था

43 Ye have heard that it hath been said 'Thou shall love, thy neighbour and hate thine enemy'.

४४ परन्तु मैं तुम से कहता हूँ कि अपने शत्रुओं से प्रेम करो उनको धन्यवाद दो जो तुम को गाली देते हैं और उनके साथ उपकार करो जो तुम से घृणा करते हैं और उनके लिये ईश्वर प्रार्थना करो जो घृणा से तुम्हारा प्रयोग करते हैं और तुमको कष्ट देते हैं।

44 But I say unto you "Love your enemies, bless them that curse you and do good to them that hate you and pray for them which despite fully use you and persecute you"

४८ इसलिये सम्पूर्ण बनो जैसा तुम्हारा पिता सम्पूर्ण है जो स्वर्ग में हैं यदि तुम सम्पूर्ण होना चाहो तो जो तुम्हारे पास है गरीबों को दो और मेरा अनुसरण करो।

48 Be ye therefore perfect even as your father which is in heaven is perfect. (Taken from Bible)

"If thou wilt be perfect, give what thou hast to the poor and follow me. (The essential

unity of all religions, Page 277, Bible).

क़ुरान में सदाचार का उपदेश

इस्लाम की धर्म पुस्तक क़ुरानमें यह सदाचार का उपदेश है:—
Quran says

Wala yaqtulun annafs—allati harram Allaho illa bil haqqi. Wajtanebu qual az zure. Was sareqo was sareqota faqtau aideyahoma Alkham ro amalish shaitani. Walla zinahum le furujehim hafizun.

"Slay none, God has forbidden it except justice require it...and avoid false words...

Woman and man who steal shall lose their hands...

Intoxicants are Satan's own device...

Those who avoid unlawfulness in sex and watchfully and resolutely control their senses, they alone achieve success.

(Taken from "The essential unity of all religions". Page 274)

Kul talau ela Kalematin, sawaim bainana wa baina kum (Q)

सदाचार के और मुख्य भाग जो सब धर्मों में समान हैं :—

(११) परोपकार और जनसेवा

सब धर्मों का एक और सार है। वह है दूसरों का उपकार करना। यदि स्वार्थ त्याग कर संसार की भलाई में सब जुट जावें तो कोई दुःखी न रहे। जिस प्रकार शरीर के एक अङ्ग में पीड़ा होने से सब शरीर को दुःख होता है इसी प्रकार संसार में यदि मनुष्य समाज का कोई अङ्ग मैला, अनपढ़ या रोगी आदि है तो शेष समाज भी इन्हीं दोषों से ग्रसित होगा यदि यह दोष दूर नहीं किये जाते। जैसे यदि किसी नगर में इनफ्लूयञ्जा (जोकाम का ज्वर) चलता हो तो वायु दूषित होकर सब को रोगी करेगी। इसलिए अपने हित में ही दूसरों को रोगों से बचाना चाहिए और जो ज्ञान धन आदि ईश्वर की कृपा से हम को मिला है, उसे हम कष्ट उठाकर कुल संसार के उपकार में लगावें।

संसार में सब धर्मों के प्रचारकों ने अनेक कष्ट उठाकर
पने धर्म का उपदेश किया। ऐसे ही सब धर्म वाले इस
ार्वभौम धर्म का संसार में प्रचार करें और सबको
व स्थानों में सदाचारी बनावें तो सब संसार सुखी रहकर
ान्ति से जीवन व्यतीत करे। मनुष्य वही है जो दूसरों के
पकार में अपना सर्वस्व निछावर कर दे और अपना तन,
न, धन सब कुछ संसार के हित में लगावे और मनुष्य
माज की जितनी हो सके सच्ची सेवा करे। प्रत्येक मनुष्य
रोपकार करे तभी सब संसार स्थायी आनन्द पा सकता है।

संसार में सब झगड़ों का मुख्य कारण स्वार्थ है।
ब स्वार्थ की मात्रा बहुत बढ़ जाती है तो मनुष्य पाप
रके दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता
। अन्य जीवों से मनुष्य बढ़कर इसीलिये है कि वह
वार्थ के अतिरिक्त सब जनों का हित और सेवा भी करता
। स्वार्थ त्यागना ही आत्मा को ऊँचा करना है।

जन-सेवा का अभ्यास छोटे से ही सब मनुष्यों को
रना चाहिये। विद्यार्थी जीवन में ही जन सेवा का अभ्यास
रना चाहिये। आजकल के प्रजातन्त्रीय युग में जो जन
ेवा जितनी अधिक करेगा उतना ही सर्वप्रिय महान नेता
ोगा। जन सेवा अनेक प्रकार से की जा सकती है

"Let all of us ascend towards and meet together on the common ground of those high truths and principles which we all hold"

(Taken from 'The essential unity of all religions'. Page 63)

Hadis, the sayings of the prophet Mohammad says "All fuqro fakhri."

"Pride do I take in utmost poverty."

(The essential unity ef all religions Page 277.

अर्थः—"किसी की हिंसा मत करो । परमेश्वर ने निषेध किया है सिवाय उस दशाके जब न्याय चाहता हो (अर्थात् जब न्यायाधीश फाँसी का दण्ड दे) और असत्य शब्दों से बचो। जो स्त्रियाँ और मनुष्य चोरी करते हैं वे अपने हाथ खोवेंगे। मादक वस्तुएँ शैतान की स्वयं युक्तियाँ हैं। वे लोग जो अधर्म से स्त्री प्रसङ्ग से दूर रहते हैं और सावधानी से तथा दृढ़ संकल्प से अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं वे ही सफलता को पाते हैं।"

"आओ हम सब उन ऊँचे सत्य और सिद्धान्तों की समान भूमि पर परस्पर मिलें और चढ़ें जो हम सब रखते

रखते हैं।" मुहम्मद कहते हैं "मुझे बहुत निर्धनता का गर्व है" हदीस में लिखा है—

"Verily all who faithfully believe in God and day of judgment and do good, whoever they be, Jews, Christians or, Sabians, shall have their reward from the Lord God. There is no fear for them, nor shall they grieve."

(Quran ii 62)

(The essential unity of all religions. Page 64)

क़ुरान इस्लाम की धर्म-पुस्तक में लिखा है :—

"वास्तव में वे सब लोग जो सत्यता से ईश्वर में विश्वास रखते हैं और निर्णय के दिन मे विश्वास रखते हैं और अच्छे काम करते हैं चाहे जो वे लोग हों, चाहे यहूदी हों, चाहे ईसाई हों, चाहे सेबिया के लोग हों उनको स्वामी परमेश्वर से उनका पारितोषिक मिलेगा। उनको कोई भय नहीं और वे दुःखी नहीं होंगे"।

यदि संसार में सब मनुष्य सार्वभौम धर्म अर्थात् यम नियमादि सदाचार का आचरण करने लगें तो किसी का कोई शत्रु ही न होगा और समस्त संसार में सुख और शान्ति होगी।

सब से उत्तम जन-सेवा जनता का अज्ञान दूर कर सद्बु उत्पन्न करना है और यदि जनता की बुद्धि ठीक हो जावे तो वह स्वयं अपने सब काम ठीक करने के समर्थ जावेगी । प्रातः और सायंकाल को अवकाश के समय जन की निरक्षरता दूर करने के लिये प्रत्येक मोहल्ला में, नगर और प्रत्येक ग्राम में प्रातःकालीन और सायंकालीन पाठशा खोलकर अवैतनिक अध्यापक बनकर जन-सेवा हो सक है। ग्रामों में जनता के स्वास्थ्य के लिये पृथक कूड़ाघर बनवा से जन-सेवा हो सकती है । जनता की आर्थिक उन्नति लिये जनता की उद्योगशालाएँ और सहयोग समितियों द्वा शिल्प कारीगरी आदि उद्योग-गृह स्थापित करना जन सेवा है। सार्वभौमधर्म का प्रचार कर जनता को सदाचार बनाना सब से बड़ी जन-सेवा है । जनता के सब प्रकार कष्ट दूर करना जन-सेवा है जिसका करना मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

परन्तु प्रचारकों के लिये यह अनिवार्य है कि वे जिस बात का प्रचार करें पहिले उस बात को स्वयं करे । महात्मा गान्धी के जीवन की सफलता की कुञ्जी यह थी कि वह पहले यह बात स्वयं करते थे तब दूसरों को उसके करने का उपदेश देते थे । छुआ छूत और मनुष्यों को जन्म से नीच

और अस्पृश्य मानने की कुरीति और कुत्सित रूढ़ि के विरुद्ध प्रचार करने के पहले महात्मा गान्धी ने एक भंगी की लड़की को अपने घर में अपनी लड़की की भांति रक्खा। सन् १९२० ईसवी में जब महात्मा गान्धी ने कांग्रेस की बागडोर अपने हाथ में ली तो पहला आदेश यही दिया कि व्याख्यान देने का केवल उन्हीं को अधिकार है जो पहले वह बात करते हों जिसके करने का उपदेश देते हों। इसका यह परिणाम हुआ कि बड़े२ व्याख्यानदाता जो केवल वर्ष में एक बार कांग्रेस में बढ़िया व्याख्यान देते थे और साल भर कुछ नहीं करते थे कांग्रेस से अलग होगये और सच्चे व्याख्यान-दाताओं के प्रचार से कांग्रेस सार्वजनिक संस्था होगई।

(१२) अनुशासन

सदाचार के लिये अनुशासन अनिवार्य है। अनुशासन में रह कर नियमानुसार जीवन व्यतीत करना मनुष्य जीवन की सफलता और उन्नति की कुञ्जी है। एक सभ्य और और शिक्षित मनुष्य और असभ्य और अनपढ़ मनुष्य में यही भेद है कि सभ्य और शिक्षित मनुष्य प्रत्येक कार्य नियम से अनुशासन में रह कर करता है परन्तु असभ्य और अनपढ़ मनुष्य प्रत्येक कार्य उद्दण्डता से जंगली जीवों की भांति बिना नियम और बिना अनुशासन

के करता है । बचपन से ही विशेष कर विद्यार्थी जीवन में, अनुशासन में रहने और नियमानुसार जीवन व्यती करने का अभ्यास करना चाहिये।

यदि हम एक दृष्टि संसार की सृष्टि पर डालें तो ह को स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि ईश्वर की सब सृ अनुशासन में नियमानुसार कार्य करती है । सब से बड़ अनुशासन नियत समय पर सब काम होना है । प्रत्येक दि प्रातःकाल सूर्योदय होता है और सायंकाल रात्रि आती है नियम में बंधे हुये तारे चलते और ऋतुएं आती हैं। यदि समय का क्रम न रहे तो परस्पर टकरा कर प्रलय हो जावे। प्रत्येक जीवधारी और वृक्ष आदि समय के क्रम से उत्पन्न होकर बढ़कर समाप्त होते हैं । नियमानुसार समय से सब काम करने की शिक्षा हमको ईश्वर की सृष्टि से लेना चाहिये। यदि हम एक नियत समय पर सब कार्य करने का नियन्त्रण अपने ऊपर सदैव रक्खें तो हम सब का जीवन व्यर्थ में व्यतीत न हो और एक प्रकार से अपनी आयु को हम लोग बढ़ा सकते हैं । माता-पिता का कर्तव्य है कि वे बच्चों को प्रातःकाल उठने, समय पर शौचादि से निवृत्त होने और समय पर स्नान भोजनादि करने का अभ्यास बचपन से ही डालें। अध्यापकगण विद्यार्थियों का अभ्यास इस बात का डालें कि

त्येक विद्यार्थी अपनी दिनचर्य्या का कार्य्यक्रम बनावे और ठीक समय पर नियम से सब कार्य करे । बहुत अभ्यास करने से बालकों का स्वभाव, नियमानुसार ठीक समय पर कार्य करने का पड़ जावेगा । तब वह अपना सम्पूर्ण जीवन अनुशासन में रख कर नियमानुसार व्यतीत कर सकते हैं।

सेना में समय पर प्रत्येक कार्य करना और अनुशासन में रहकर जीवन व्यतीत करने का इतना अभ्यास कराया जाता है कि अनुशासन मे रहना सैनिकों का स्वभाव हो जाता है। एक उदाहरण प्रसिद्ध है कि एक सैनिक जो पेन्शन पाता था वह एक शीशे की तश्तरी हाथ में लिये जारहा था एक हास्यकर्ता ने हँसी में जोर से कहा- एटेन्शन "सावधान" सैनिक तुरन्त हाथ सीधे करके खड़ा हो गया और तश्तरी हाथ से गिर कर फूट गई।

शरीर का अनुशासन यह है कि समय से प्रतिदिन व्यायाम करना और समय तथा नियम से भोजन तथा सब काम करना । इनमें अनियमता करने से शरीर का स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता। मन का अनुशासन उसको नियन्त्रण में रखकर समय से पढ़ना और समय से खेल-कूद व्यायामादिक कर मन को आराम देना है।

आत्मा का अनुशासन उसको दुष्ट विचारों, कुसङ्गति तथा कुकर्मों से अलग रखना है तथा अपने बड़ों की आज्ञा पालन

करना है। माता-पिता गुरु, तथा बड़ों का आदर-सम्म तथा आज्ञा-पालन करना आत्मा को अनुशासन में रखना है

परन्तु आज्ञा-पालन करने का एक अपवाद है। वह यह कि यदि बड़ों की आज्ञा रूढ़ि-रिवाज के आधार पर हो ं सार्वजनिक हित के विरुद्ध हो तो आदर से उसके पालन करं में अपनी असमर्थता प्रकट करना चाहिए। उदाहरण के लि विवाह में दहेज लेना अथवा जन्म से उत्तम वर्ण की अयोग्य कन्य से विवाह करने को यदि जाति-पाँति की रूढ़ि-रिवाज के कारण माता-पिता आज्ञा दें तो युवकों को नहीं पालन करना चाहिए।

ऐसे ही जो छूत जातियां कही जाती हैं जैसे भङ्गी-डोमादि यदि उनको न छूने की माता-पिता या गुरू आदि बड़े आज्ञा दें तो वह नहीं माननी चाहिये, क्योंकि सार्वजनिक हित के विरुद्ध यह आज्ञाएं रूढ़ि-रिवाज पर आश्रित कुरीतियों को बढ़ाने वाली और सार्वजनिक हित को नाश करने वाली हैं। परन्तु आदर-पूर्वक समझा कर इन्कार करना चाहिये। जैसे देखो संसार में भङ्गी-डोमादि छूत कही जाने वाली जातियों को ठीक उसी भांति ईश्वर ने बनाया है जैसी बड़ी कहलाने वाली जातियों को। यदि ईश्वर की ओर से कुछ भेद होता तो उनके सींग पूंछ या और कोई विशेष चिह्न बनाता दूसरे कुत्ते आदि पशु जो मैला खाते हैं उनको तो बरतनों

भोजन मिला कर बरतन मांजकर शुद्ध माना जाता है
रन्तु भङ्गी को छुआने से ही बर्तन अशुद्ध हो जाता है।
व कुत्तों को छू सकते हैं तो भङ्गियों को क्यों नहीं
त्यादि।

ऐसे ही दहेज-प्रथा से दुःखी होकर अनेक कन्याओं ने
ात्महत्या कर ली और लड़की के पिता का जीवन कष्टमय
न जाता है क्योंकि उसे जीवन भर रुपया कन्याओं के विवाह
दहेज में देने के लिये एकत्रित करना पड़ता है और लड़के
पिता को जुआं के खेल के समान बिना पुरुषार्थ वा
रिश्रम के केवल लड़के के पिता होने के कारण रुपया मिल
ाता है। मानों लड़का बेंचा सो भो दाम लेकर भो लड़के
ो नहीं छोड़ सकता। यह सब समाज की कुरीतियां और
ुत्सित रूढियाँ हैं। जो युवक ही नष्ट कर सकते हैं।

ऐसे ही यदि धर्मशास्त्र का आश्रय लिया जावे तो उसमें भी
ार ही वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दिये हैं उनमें
असंख्य उपवर्णों का नाम तक नहीं है किसी धर्म-शास्त्र में
अथवा वेद पुराणादि धर्म ग्रन्थ में गोड़, कान्यकुब्ज,
सारस्वत, सरयूपारी, आदि तथा चौहान, चन्देल, उमर वैश्य,
अग्रवालादि उपजातियों के तथा शूद्रों की उपजातियों की
सहस्रों उपजातियां और अनेक नवीन जातियों का नाम

तक नहीं है। १६२१ की जनसंख्या के कमिश्नर ने भारतवर्ष में बङ्गाल के दक्षिण भागों में ऐसी उपजातियों का वर्णन किया है जैसे वे दूधवाले जो दूध का दही बनाकर मक्खन निकालते हैं रोटी बेटी का सम्बन्ध उन दूधवालों से नहीं करते जो कच्चे दूध से मक्खन निकालते हैं। ऐसे ही वह मछिहारे जो दाहिनी ओर से बाईं ओर जाल बुनते हैं उन मछिहारों से रोटी बेटी का सम्बन्ध नहीं कर सकते जो बाईं ओर से दाहिनी ओर को जाल बुनते हैं। इन सहस्रों उपजातियों का नाम तथा ऐसे ही ब्राह्मणों में बीस बिसुओं आदि की जातियों का नाम तक किसी भी धर्म ग्रन्थ या स्मृति में नहीं है। यह कुरीतियां रस्म-रिवाजों की रूढ़ियों में बन गई हैं। इनको सार्वजनिक हित के लिये युवकों को जड़-मूल से तुरन्त नष्ट करना चाहिये।

सार्वजनिक हित की नाशक आज्ञाओं को छोड़ कर शेष बड़ों की सब आज्ञायें नम्रता से पालन करना चाहिए। प्रजातन्त्र सरकारी आज्ञाओं को भी सब को पालन करना चाहिए। प्रजातन्त्र स्वराज्य में प्रजा का स्वयं राज्य होता है। सब प्रजा इतनी अधिक है कि वह एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकती। इस कारण वह थोड़े से अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजती है जो व्यवस्थापिका सभा बनाते हैं जो क़ानून नियमादि

बनाती हैं। सभासद् प्रजा के प्रतिनिधि होने के कारण जो भी नियम क़ानून बनाते हैं वह स्वयं प्रजा के हैं। अपने नियम कानून तोड़ना अपनी ही हँसी करना है। इसलिये अपनी प्रतिनिधि रूप सरकार के बनाए नियमों को सब जनता को मानना चाहिये। यदि जनता के प्रतिनिधियों ने कुछ दूषित नियम बनाये हैं तो दूसरी बार उनको निर्वाचित नहीं करना चाहिये, परन्तु उन दूषित नियमों को भी, जब तक जनता के अच्छे प्रतिनिधि उन्हें न बदलें, मानना धर्म है। दोष जनता ही का था जो ऐसे प्रतिनिधि भेजे।

ऐसे ही जनता के प्रतिनिधियों के बनाये नियमानुसार जो भी अधिकारी बनाया गया है उसकी आज्ञा मानना जनता का कर्तव्य है क्योंकि वह जनता का ही बनाया हुआ है। उसको नियमानुसार की हटाना चाहिए, उद्दण्डता से नहीं। जनता को यह अभ्यास डालना चाहिये कि, कष्ट उठा कर अपने प्रतिनिधियों की राजव्यवस्था के अनुशासन में सहर्ष रहें और अपना गौरव समझें कि हम स्वतंत्र हैं। केवल अपना ही शासन अपने ऊपर मानते हैं किसी विदेशी राजा के हम परतंत्र दास नहीं हैं किन्तु सम्पूर्ण स्वामी हैं। ऐसे ही अपनी रेल आदि की सवारी करने में बिना टिकट यात्रा करना अपनी हँसी करना है। अपने ही पुलिसादि अधिकारियों को

करना चाहिए। परमेश्वर ने सब की रुचि भिन्न भिन्न बनाई है। ईश्वरीय नियम नहीं मिट सकता। दूसरा अपना कर्तव्य चाहे पालन करे चाहे न करे परन्तु प्रत्येक को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। यदि सब अपना अपना कर्तव्य पालन करें तो परस्पर के झगड़े स्वयं मिट जायँगे।

यह भी सम्भव हो सकता है कि एक मनुष्य अपनी बात को सत्य मानता हो दूसरा अपनी को सत्य मानता हो और समझाने बुझाने पर भी दोनों एक मत नहीं होते तो प्रेम से दोनों को भिन्न भिन्न विचार वाले होना चाहिए परन्तु परस्पर व्यवहार में अन्तर नहीं आना चाहिए।

महात्मा गांधी का सिद्धांत है कि मनुष्य के कार्य अच्छे या दुष्ट हुआ करते हैं, उसकी आत्मा दुष्ट नहीं होती। यदि कोई दुष्ट मनुष्य है तो उसके दुष्ट कार्यों को छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह दुष्ट कार्य नहीं छोड़ता तो उससे असहयोग करना चाहिए जब तक वह दुष्ट कार्य न छोड़ दे परन्तु मार-पीट नहीं करनी चाहिए। असहयोग का आकार परस्पर बोल-चाल बन्द करना और सम्बन्ध छोड़ना हो सकता है। अपने मन में यह न्याय का सिद्धांत अवश्य रखना चाहिए कि जिसने अनेक बार हमारे ऊपर उपकार किया अथवा हमारा काम किया परन्तु एक दो बार हमारा

ाम न किया तो ,पहले का अनेक वार का उपकार हम कदापि
। भूलें और प्रयत्न तो यह करना चाहिए कि उतनी वार हम भी
सका उपकार और काम कर दें तब उससे उऋण होकर
सके काम करने से इन्कार करें।

सदाचार का अर्थ है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह छोड़
र सत्यता से प्रेम-पूर्वक परस्पर व्यवहार किया जावे।

परस्पर सदाचार के व्यवहार का मुख्य सिद्धान्त यह है कि
सरों से वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि
सरे तुम्हारे साथ करें। यदि तुम चाहते हो कि दूसरे
म्हारी सहायता करें तो तुमको दूसरों की सहायता करनी
ाहिये। उन बातों की दूसरों से मत आशा करो जो तुम
वयं दूसरों के लिये नहीं करना चाहते।

यदि कोई उत्सवादि तुम्हारे यहां है और तुमने दूसरों
ो निमन्त्रित किया है तो तुम्हारा कर्तव्य है कि आने वालों
ो आगे जाकर मिलो और लाकर बिठाओ।

नौकरों के साथ सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिये
नके कष्टों का ध्यान रखना चाहिये और नौकरों को चाहिये
के बिना किसी की देख रेख के अपना कर्तव्य सत्यता से पालन
रें और बिना कहे प्रसन्नता से अपना काम सदैव पूरा करें।
ादि परस्पर नहीं बनती और अपना २ कर्तव्य चुप चाप

आवश्यकता पड़ने पर सहायता न देना अथवा यथा योग्य इनका सत्कार न करना अपना ही अपमान और निरादर करना है।

संक्षेप में अपनी सरकार के अनुशासन में रहने तथा कौटुम्बिक बड़ों के तथा अपने शिक्षक गुरुओं के अनुशासन में रहने का निरन्तर अभ्यास डालना चाहिये, और प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने वैयक्तिक जीवन में अपने स्वयं बनाये नियमानुसार ठीक समय पर सब कार्य्य करके अपना जीवन अनुशासन में व्यतीत करे। तभी जीवन सब प्रकार से आनन्दित हो सकता है।

एक व्यक्ति का ठीक समय पर काम न करने से मनुष्य समाज को बहुत हानि होती है। कल्पना कीजिये आप को जनता में एक व्याख्यान देना है। आपने नियत समय में एक घण्टे की देर कर दी। अब यहां सहस्रों मनुष्य जो एकत्रित हैं उनके सहस्रों घण्टों की हानि देश को हुई। ऐसे ही एक व्यक्ति के समय का नियन्त्रण न मानने से अनेक मनुष्यों का समय व्यर्थ जाता है जिसका अर्थ है कि एक प्रकार से इतने घण्टों से सब की आयु घटी। इसलिये समय का अनुशासन सब मनुष्यों को मानना अनिवार्य है। रेल पर टिकट क्रम से लेना रेल के डब्बे में चढ़ने वालों को स्थान

ना यदि वास्तव में स्थान हो। लेटे से उठकर बैठना यह सब बातें अनुशासन मे आती हैं जिससे अपने ऊपर नियन्त्रण रखना पड़ता है।

(१३) परस्पर सदाचार का व्यवहार

संसार के जीवधारियों में मनुष्य एक सामाजिक जीवधारी है। मनुष्य सदैव समाज में ही रहता है। केवल अकेला मनुष्य नहीं रहता। वह एक कुटुम्ब में तथा एक समाज में रहता है। कुटुम्ब में सदाचार का व्यवहार करना बचपन से ही बालकों को सिखाना चाहिए। परस्पर भाई-बहिनों तथा स्त्री-पुरुषों में प्रेम का व्यवहार होना चाहिए। क्रोध और मार-पीट तो कदापि नहीं करना चाहिए। समझा-बुझा कर परस्पर के झगड़े निपटाना चाहिए।

एक नियम का सब पालन करें और वह यह है कि परमेश्वर ने सब मनुष्य भिन्न भिन्न बनाये हैं। सब के मस्तिष्क मनादि भी भिन्न बनाये हैं। बिल्कुल एक ही प्रकार के दो मनुष्य नहीं हो सकते इसलिए सब से बड़ी भूल जो मनुष्य करता है वह यह है कि वह चाहता है कि बिल्कुल मेरी भाँति दूसरे मनुष्य क्यों नहीं हो जाते। दूसरे के भिन्न विचारों के लिए सहिष्णुता चाहिए। यद्यपि प्रयत्न यही होना चाहिए कि मेरे विचार वाले दूसरे हों परन्तु यदि नहीं होते तो क्रोध नहीं

करने से भी परस्पर नहीं बनती तो प्रेम से अलग हो जाना चाहिये कटुता और द्वेष कदापि नहीं होना चाहिये।

पड़ोसियों के दुख-सुख में सम्मिलित होना चाहिये और अपना कर्तव्य करना चाहिये। दूसरे अपना कर्तव्य चाहे करें चाहे न करें।

जिस प्रकार से मनुष्य के शरीर में किसी अङ्ग में कष्ट होने से शेष शरीर को सुख नहीं हो सकता इसी प्रकार मनुष्य समाज के किसी भाग को कष्ट होने से उसके दूसरे भागों को सुख नहीं हो सकता। मनुष्य का जीवन दूसरे मनुष्यों के जीवन से बहुत सम्बन्धित है। भोजन वस्त्रादि सैकड़ों मनुष्यों के परिश्रम से प्राप्त होता है उसके उत्पन्न करने और वर्तमान अवस्था में लाने में सैकड़ों का हाथ है। ऐसे ही जहां हम रहते हैं वहां आस पास के रहने वालों की शुद्धता या गन्दगी का प्रभाव हम पर बिना पड़े नहीं रह सकता इसलिये अपने ही सुधार और सुख के लिये यह अनिवार्य है कि हम और लोगों को भी सुधारे रहें ताकि उनमें गन्दगी न रहने पावे।

इसलिए यह कर्तव्य हो जाता है दूसरों में सदाचार के व्यवहार का प्रचार करना चाहिए, परन्तु सौ प्रचारों से स्वयं एक बार उस कार्य का करना अधिक प्रभावशाली होता है और

बात स्वयं करे उसी का प्रचार करे तो उस में सफलता
रय होती है । "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" का सिद्धान्त
स्वीकार करना चाहिये, परन्तु पहले अपने आप उस काम
करना चाहिये तब उसका प्रचार किया जावे ।

सदाचार के प्रचार में महात्मा गांधी के जीवन का आदर्श
को अपने संमुख रखना चाहिए। उनका सिद्धांत था
सदाचार सदाचरण स्वयं करने ही से सीखा और सिखाया
सकता है केवल व्याख्यानों और पुस्तकों से नहीं ।

लोक सेवकों और प्रचारकों के लिए यह अनिवार्य है कि
पहले कार्य्यरूप से उन सब बातों को स्वयं करें तब उनका
ार जनता में करें तभी वह अपने कार्य्य में सफल हो सकते
। महात्मा गांधी के जीवन की सफलता का रहस्य यही
द्धांत था।

. परस्पर सदाचार के व्यवहार की कुछ और बातें

जिस ग्राम व नगर के मोहल्ले में रहते हो वहाँ किसी
: विपत्ति पड़ने पर बिना बुलाये जाकर सहायता करनी
ाहिए। जैसे यदि आग लगे, डकैती पड़े, महामारी आदि
यङ्कर रोग फैले, तो डाक्टरों की सहायता लेने डकैती में पुलिस
। सहायता देलाने को स्वयं दौड़-धूप करना चाहिए।
परिचित लोगों को भी यदि चोट लगे तो बिना कहे

अस्पताल पहुँचाना अथवा मेला में खोये हुए स्त्री, बच्चों आदि को बिना कहे पुलिस व मेला समितियों द्वारा उन के घर पहुँचाना नागरिक सदाचार है।

यदि कोई व्यक्ति ही दुष्ट या दुराचारी हो तो उस से बिल्कुल अलग रहना ही सदाचार है परन्तु यदि वह दुष्ट सब को कष्ट देता हो तो सज्जन आदमियों को मिलकर उसको दण्ड दिलाने का प्रयत्न करना भी सदाचार है। दूसरे धर्म के पूजा-स्थानों का निरादर कदापि नहीं करना चाहिये। परन्तु यदि वहाँ जाना पड़े तो आदर दिखलाने को जूता उतारना खड़ा होना आदि जरूर चाहिये। धर्म प्रचारकों को चाहिये कि प्रेम से मित्र बनकर दूसरे धर्म वालों में अपने धर्म का प्रचार समझा बुझा कर करें। धन का लालच देकर अथवा भय दिखाकर कदापि न करें। व्यापार में सत्यता से व्यवहार होना चाहिये। धोखा देकर खराब वस्तु को अच्छा बताकर अथवा और वस्तु को और बताकर कदापि व्यवहार नहीं करना चाहिये। सब से नम्रता से व्यवहार करना चाहिये। यदि कोई अपने घर मिलने आवे तो उस को आसन देकर सहानुभूति से उस की बात सुनना चाहिये और यदि उस का काम नहीं कर सकते तो नम्रता से अपनी असमर्थता प्रकट कर देना

चाहिये। परस्पर सदाचार का व्यवहार इतना बड़ा विषय है कि एक बड़ा ग्रन्थ इस पर लिखा जा सकता है। संक्षेप में थोड़ा बतला दिया। सदाचारी लोग जैसा व्यवहार करते हों वैसा करना चाहिये और परस्पर सदाचार के व्यवहार का सार यह है कि सब मनुष्य न्याय से सब काम करें।

अधिकार और कर्तव्य

प्रत्येक मनुष्य के अधिकार और कर्तव्य साथ साथ चलते हैं। सदाचार और न्याय यही है कि जितने अधिक अधिकार मिलें उतना अधिक अपना उत्तरदायित्व समझ कर उतने अधिक कर्तव्य पालन किये जावें। जो अधिकार पाकर अपना कर्तव्य पालन नहीं करता वह दुराचारी, अन्यायी और पापी है। यदि सेवक अधिक वेतन पाने का अधिकारी हो तो साथ ही अधिक सेवा करना भी उसका कर्तव्य है। यदि सब विभागों के लोग इस न्याय पर चलें तो सब काम ठीक होकर सब में स्थायी शान्ति और आनन्द स्थापित हो सकती है।

---
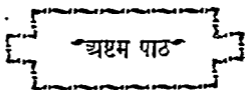
(१४) अस्पृश्यता निवारण

मनुष्य समाज में किसी मनुष्य को जन्म से ऊंचा अथवा नीचा और अस्पृश्य मानना सदाचार के विरुद्ध है।

अस्पृश्यता के अर्थ 'छूने योग्य न होने के हैं'। यदि हम इतिहास पर दृष्टि डालें तो हम को ज्ञात हो जावेगा कि भारतवर्ष में वेदों के समय में अस्पृश्यता कहीं भी नहीं थी परन्तु स्मृतियों के समय में अपराधी मनुष्यों को दण्ड देने के लिये कुछ प्रायश्चित्त नियत किये गये थे, जैसे मनुस्मृति आदि में ब्राह्मण हत्या, सुरा अर्थात मदिरा पीना आदि महापातक माने गये थे और जो मनुष्य इन पातकों को करता था उससे दण्ड के रूप में हिन्दू समाज बारह वर्ष के लिये असहयोग करती थी। उसको न छूती थी न उस से कोई सम्बन्ध रखती थी और उस को अस्पृश्य अर्थात न छूने योग्य मानती थी। बहुत

मय व्यतीत होजाने पर ऐसे महापातकी मनुष्यों की सन्तानें
ो अस्पृश्य मानी जाने लगीं। वास्तव में उन की सन्तानों ने
। महापातक नहीं किये और निर्दोप हैं। इस कारण रूढ़ि-रिवाज
: आधार पर उन को भी अस्पृश्य मानना अन्याय और
त्याचार है। दूसरे, अस्पृश्य कही जाने वाली जातियां,
नुष्य समाज का मल आदि दूर करने के कारण जो रोगों के
तु हैं, बहुत उपकारक हैं। उनके साथ तो सब से अच्छा व्यव-
ार होना चाहिये परन्तु हिन्दू लोग रूढ़ि रिवाज के दास होने
कारण उन बेचारों के साथ कुत्ते-बिल्ली जो मलादि खाते हैं
न से भी निकृष्ट व्यवहार करते हैं। कुत्ते-बिल्ली आदि अस्पृश्य
हीं हैं। उन को हम छूते हैं, उन को अपने बरतनों में भोजन
लाते हैं परन्तु कितना अन्याय है कि अस्पृश्य जातियों को
म नहीं छूते हैं और न अपने बरतनों में उनको भोजन देते हैं।
िन्दू समाज का यह अन्धविश्वास है कि ईश्वर ने अस्पृश्य
ातियाँ बनाई हैं इसलिये जो कोई इन जातियों में उत्पन्न
ोता है वह जन्म ही से अस्पृश्य, नीच और छूत होता है।
दि हम थोड़ा भी विचार करें तो हम को ज्ञात हो जावेगा
कि ईश्वर ने सब मनुष्यों को केवल एक मनुष्य जाति में
नाया है। मनुष्य जाति के भीतर वर्ण तथा जातियाँ मनुष्यों
ी बनाई हुई हैं। यदि ईश्वर की ओर से वर्ण तथा जातियाँ बनी

होतीं तो जन्म ही से ईश्वर के बनाये भिन्न-भिन्न चिन्ह होते, जैसे पशुजाति में ईश्वर ने सींग पूंछादि चिन्ह दिये हैं परन्तु अछूत्य जातियों में और ब्राह्मणआदि जातियों में कोई ईश्वरी भिन्न चिह्न नहीं है। जैसा बताया जा चुका है कि भिन्न-भिन्न उद्यम करने से भिन्न-भिन्न जातियाँ बन गई।

महाभारत में लिखा है कि केवल मनुष्य एक जाति है और जितने वर्ण हैं उन सब में परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध और मेल होने के कारण सब वर्ण वर्णसंकर हो गये हैं, किसी का वर्ण अर्थात् जाति परखी नहीं जा सकती। देखो महाभारत में युधिष्ठिर-अजगर सम्वाद।

युधिष्ठिर उवाच—जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
सङ्करात्सर्ववर्णानांदुष्परीक्ष्येति मे मतिः॥ ३१
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम॥ ३२
(महाभारत वनपर्व अध्याय १८०)

अर्थ:— युधिष्ठिर ने कहा कि हे बड़ी बुद्धि वाले महासर्प अजगर यहाँ अर्थात् संसार में जाति मनुष्यपन में है और सब वर्णों के वर्णसंकर हो जाने के कारण किसी की जाति की परीक्षा नहीं की जा सकती। ३१

सब मनुष्य सब स्त्रियों में बच्चे उत्पन्न करते हैं और सब मनुष्यों की वाणी मैथुन जन्म मरण एक जैसा होता है। ३२

ईश्वर ने किसी मनुष्य को जन्म से ऊंचा-नीचा नहीं बनाया है। वर्णों की अस्पृश्यता तभी समूल नष्ट हो सकती है जब सब वर्णों में परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध स्थापित हो जावे। सरकार द्वारा तो केवल सार्वजनिक स्थानों में ही अस्पृश्यता का व्यवहार दण्डनीय किया गया है, जैसे सार्वजनिक कुओं से पानी भरने में, धर्मशालाओं में अथवा रेल सड़क, आदि के प्रयोग करने में यदि कोई अस्पृश्य कहने वाली जातियों का निषेध करेगा तो उसको सरकार दण्ड देगी। परन्तु परस्पर व्यवहार में सहस्त्रों अवसरों पर हम को अस्पृश्यता का नाश करना चाहिये। सदाचार और न्याय के नाते पद् दलित और अस्पृश्य जातियों के साथ भोजन करने आदि से अस्पृश्यता का नाश करना चाहिये। तभी भारतवासी एक सुदृढ़ राष्ट्र बन सकते हैं। दुर्भाग्य से हिन्दुओं में सामाजिक रूढ़ि-रिवाज की कुरीतियों के कारण कुछ जातिया इतना नीच मानी जाती हैं कि उनका छूना तक महा अधर्म माना जाता है। उनको कुत्ता बिल्ली जानवरों से भी नीच माना गया है। कुत्ता बिल्ली को छू सकते हैं, अपने बरतनों में भोजन खिला सकते

हैं परन्तु छूत कहलाने वाली जातियों को छूना अथवा बरतन छुआना बड़ा पाप माना जाता है।

परस्पर सदाचार के व्यवहार के लिये यह अनिवार्य है कि मनुष्यों के साथ मनुष्यता का व्यवहार किया जावे और किसी को भी जानवरों से भी नीच न समझा जावे। जन्म से ही ऊंच-नीच होने का कारण हिन्दू वर्णव्यवस्था है जिसके इतिहास को हमको देखना चाहिये। वास्तव में वेदों के समय में केवल चार वर्णों का ही अस्तित्व था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। जो पढ़ने पढाने आदि मस्तिष्क का काम करते थे वे ब्राह्मण, जो शत्रुओं से रक्षा का कार्य करते थे वे क्षत्रिय और जो व्यापारादि उद्योग करते थे वे वैश्य तथा जो सब की सेवा करते थे वे शूद्र कहाते थे। मानवधर्मशास्त्र के समय तक इन चारों वर्णों में रोटी-बेटी का परस्पर सम्बन्ध भी होता था देखो। स्मृति।

> शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वा विशः स्मृते।
> तेच स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः॥
>
> (मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक १३)
>
> तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम्।
> ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः॥
>
> (याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ५७)

मनुस्मृति में अध्याय तीन, श्लोक १३ में स्पष्ट आज्ञा है कि "शूद्रा शूद्र की भार्या (विवाहिता स्त्री) होवे शूद्रा और वैश्या वैश्य की भार्या होवे और शूद्रा, वैश्या और क्षत्रिया क्षत्रिय की भार्या होवे और शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया और ब्राह्मणी ब्राह्मण की भार्या होवे, अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जिस कन्या से चाहे धर्मशास्त्र की आज्ञानुसार विवाह कर सकता है। क्षत्रिय क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र कन्या से विवाह कर सकता है, वैश्य वैश्य वा शूद्र कन्या से विवाह कर सकता है और शूद्र केवल शूद्र कन्या से विवाह कर सकता है"। मनुस्मृति के पश्चात् याज्ञवल्क्य स्मृति बनी जिसके समय में शूद्रों से घृणा की जाने लगी थी परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों में परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध होता था। याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ५७ में स्पष्ट आज्ञा है कि "ब्राह्मण की ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य भार्या हो, क्षत्रिय की क्षत्रिय या वैश्य भार्या हो और वैश्य की वैश्य भार्या हो और शूद्र की शूद्र भार्या हो"।

महात्मा गान्धी जन्म से वर्णव्यवस्था नहीं मानते थे। वे जन्म से वैश्य थे और उन्होंने अपने पुत्र का विवाह श्री राजगोपालाचार्य्य, जो जन्म से ब्राह्मण हैं, उनकी पुत्री

से किया। महात्मा गान्धी की दृष्टि में कोई वर्ण जन्म से ऊंचा या नीचा नहीं था। महात्मा गांधी ने एक भङ्गी की लड़की को गोद ली हुई लड़की की भाँति अपने घर में रक्खा था।

महाराज हर्षवर्धन का समय चीनी यात्री ह्वेनसांग के प्रमाणों से इतिहास में ठीक माना जाता है जो ७२० से ७२५ ईसवी शताब्दी में भारत राज्य करते थे, जब उक्त यात्री भारत में रहा। उनके विषय में उक्त चीनी यात्री ने लिखा है कि हर्ष वैश्य थे और उनकी बहन का विवाह क्षत्रिय से हुआ था। बाण कवि (जो हर्ष के राजकवि थे) के पिता ने एक विवाह ब्राह्मण कन्या से किया था जिससे बाण उत्पन्न हुए थे और दूसरा विवाह शूद्र कन्या से किया था जिससे बाण का दूसरा भाई हुआ था।

महाभारत पुराणों आदि में चारों वर्णों में परस्पर अनेक रोटी-बेटी के सम्बन्धों के उदाहरण मिलते हैं। उनके देने की आवश्यकता नहीं है। आजकल की सहस्त्रों उपजातियों का नाम तक वेदों, शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों और किसी हिन्दू धर्म-ग्रन्थ में नहीं मिलता है।

वास्तव में यह चार वर्णों की उपजातियों तथा अनेक नवीन जातियाँ सैकड़ों वर्षों में इस प्रकार बन गई कि जो मनुष्य

जिस व्यवसाय को करने लगे उसी व्यवसाय के नाम से एक जाति बन गई, जैसे लकड़ी का काम करने वालों की बढ़ई, चाम का काम करने वालों की चमार, लोहे का काम करने वालों की लोहार जाति बन गई ऐसे ही जितने व्यवसाय उतनी जातियाँ बन गई।

इस के अतिरिक्त भिन्न भिन्न स्थान के रहने वालों की पृथक पृथक जाति बन गई, जैसे कन्नौज के रहने वाले ब्राह्मण कान्य-कुब्ज बन गये। सरयू नदी के पार रहने वाले सरजूपारी, इत्यादि, इत्यादि। यहाँ तक भेद-भाव बढ़ा कि परस्पर चार वर्णों में रोटी बेटी का सम्बन्ध तो अलग रहा जो वेदों और मनुस्मृति के समय में था, एक वर्ण ही की उपजातियों में रोटी बेटी का सम्बन्ध होना असम्भव हो गया। ८ कनौजिया ९ चूल्हे बनने लगे। ऊँच-नीच का इतना विचार बढ़ा कि भङ्गी आदि जातियों को कुत्ते-बिल्ली से भी अधिक निकृष्ट मानने लगे और सदाचार के स्थान पर दुराचार का व्यवहार परस्पर होने लगा।

परस्पर सदाचार के व्यवहार के लिये यह अनिवार्य है कि सब जातियों और वर्णों मे परस्पर रोटी-बेटी का सम्बन्ध होवे जैसा वैदिक तथा मानवधर्म शास्त्र के समय में था। जब हम

भोज करें तो सब जाति और उपजाति के साथ बैठ कर भोजन करें। हाँ डाक्टरों की सम्मति के अनुसार एक दूसरे का जूठा न खावें, न एक पात्र में खावें क्योंकि इससे सांक्रामिक रोग हो जाते हैं। परन्तु साथ बैठकर सब मनुष्यों का खाना सदाचार है और परस्पर समता और प्रेम भाव का बढ़ाने वाला है।

ऐसे ही जहां सामाजिक कुरीतियों के कारण असंख्य जातियाँ और उपजातियाँ बिल्कुल अलग हो गई वहां भोजन के भी विचित्र भेद किये गये। जैसे भुर्जी चावल को पानी में आधा पका कर कूट कर चूड़ा बनादे वह पाक है अथवा इन्हीं आधे उबले चावलों को भून कर लैया बना दे वह भी पाक है परन्तु यदि चौके में पवित्रता से चावल का भात पकाया जावे तो छूत। सनाढ्य ब्राह्मण का पकाया भात कान्यकुब्ज नहीं खा सकता। शूद्र का पकाया भोजन कोई और जाति वाला नहीं खा सकता है। ऐसे ही घी में सिंकी हुई पूड़ी पाक, बिना घी आग पर सेंकी गई रोटी छूत। यह सब कुरीतियां दूर करना चाहिये और सदाचार के लिये यह आवश्यक है कि सब जातियों के सब मनुष्य मिल कर सब भेद-भाव मिटा कर एक साथ बैठ कर रोटी, चावल, दाल, खीरादि

(१५) आचारिक साहस और निर्भयता

सदाचार के लिये आचारिक साहस अनिवार्य है। प्रत्येक-
क्ति के हृदय में अच्छी और बुरी प्रवृत्तियों में युद्ध हुआ
रता है। उसमें आचारिक साहस से ही मनुष्य दुष्ट प्रवृत्तियों
र विजय पाता है और सत्य का पालन कर सकता है।

सत्य विचार प्रकट करने और सत्याचरण करने में भी प्रायः
सरों के स्वार्थों को हानि पहुँचती है जिससे दूसरे मनुष्य
प्रसन्न हो जाते हैं। इस कारण दूसरों से सद्व्यवहार करने
ौर अपने सत्य विचार प्रकट करने तथा सत्यता से कार्य्य
रने में आचारिक साहस और निर्भयता की आवश्यकता
ड़ती है। सभाओं मे अपने सत्य विचार प्रकट करने के
लये आचारिक साहस अनिवार्य है। मनुष्य समाज के किसी
वभाग में भी जहाँ अपने कर्तव्य को सत्यता से पालन करने
ं दूसरों के स्वार्थों को हानि पहुँचती हो वहाँ सदाचरण करने
ं प्रायः कष्ट भी उठाना पड़ता है और दूसरे शत्रु बन जाते
ैं। ऐसी अवस्था में सत्य और अहिंसा पर निर्भीकता
े डटे रहना ही वास्तविक सदाचार है और स्वतन्त्र
ाजातन्त्र देशों में तो अनेक पुरुष सम्मति अर्थात् वोट के
लेये आते हैं। वहां स्वयं अपना अथवा अपने सम्बन्धियों

के स्वार्थों को भी सार्वजनिक हित के लिये छोड़ना पड़ता है और उसी समय सच्चरित्रता की परीक्षा हुआ करती है। जो मनुष्य सदाचारी है उनमें इतना आचारिक साहस अवश्य होना चाहिये कि वे नम्रता से उस काम के करने के लिये अपनी असमर्थता प्रकट कर दें जो काम असत्य ज्ञात होता हो अथवा जिसके करने को अन्त करण न कहता हो।

वास्तविक निर्भयता ईश्वर विश्वास से आती है कि सिवाय ईश्वर के और किसी से भयभीत नहीं होना चाहिये और ईश्वर को साक्षी मानकर पहले अपने अन्त करण में यह निर्णय कर लेना चाहिये कि कौन बात सत्य है फिर उस पर डटे रहना चाहिये। ससार के इतिहास में अनेक उदाहरण हैं कि जिन महापुरुषों ने मनुष्य समाज का सुधार किया वह बहुत साहसी और निर्भीक थे और उनको मृत्यु से भी भय नहीं था। ईसा मसीह ने ईसाई धर्म का प्रचार किया उस समय के मनुष्य ईसा के इतने शत्रु होगये कि उन्होंने ईसा को काठ के साथ खड़ा कर कुल शरीर में कीलें छेद कर मार डाला। ईसा मसीह जिसको सत्य समझते थे उसके प्रचार से नहीं हटे। इसी प्रकार मुहम्मद साहब ने इस्लाम धर्म का प्रचार किया और जिसको वह सत्य मानते थे उसके प्रचार से शत्रुओं के भय से नहीं हटे।

इसी भाँति लोगों ने स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य्य-समाज के प्रवर्तक को मार डालने के प्रयत्न किये परन्तु वह वैदिक धर्म के प्रचार से नहीं रुके।

महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा का प्रचार ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में किया क्योंकि वह असत्य पर आधारित शासन सत्ता से भारतवर्ष को परतन्त्र बनाये था। महात्मा गान्धी कई बार जेल भेजे गये और उन्होंने अनेक कष्ट मनुष्यों के हित के लिये उठाये परन्तु सत्याग्रह पर डटे रहे और संसार में प्रथम उदाहरण रख गये कि सत्याग्रह के द्वारा अहिंसा का व्रत पालन करते हुये बिना अस्त्रों और शस्त्रों के संसार के सब से बड़े शक्तिशाली देश पर कैसे विजय प्राप्त की जाती है। अन्याय को स्वयं कष्ट उठा कर सत्याग्रह और अहिंसा से नष्ट करना चाहिये। ईश्वर पर अटल विश्वास से महात्मा गान्धी में इतनी निर्भीकता थी कि वे मृत्यु से कभी नहीं डरते थे। सब से अधिक भय मनुष्य को मृत्यु से होता है परन्तु सदाचारी मृत्यु से नहीं डरता वह तो केवल ईश्वर से डरता है और किसी मनुष्य से जो दुराचारी हो नहीं डर सकता। महात्मा गान्धी की मृत्यु भी लोकहित और सदाचार के प्रचार करने के कारण हुई। वह प्रचार करते थे कि परस्पर साम्प्रदायिक कलह और एक दूसरे सम्प्रदायों

के मनुष्यों की हत्याएं तुरन्त बन्द होना चाहिये । सब सम्प्रदाय मनुष्यता से पतित न होवें । कोई धर्म निरपराध मनुष्यों को मार डालना धर्म नहीं बताता प्रत्युत उसे महापाप बताता है। फिर यह परस्पर सम्प्रदायों में नर संहार कैसा ? पहले उन पर बम फेंका गया परन्तु वह बच गये । वे मृत्यु से नहीं डरते थे अतः उन्होंने सत्य का प्रचार जारी रक्खा। पश्चात् उनको गोली से मार डाला गया कि वे हिन्दू सम्प्रदाय की सरकार भारतवर्ष में क्यों नहीं स्थापित होने देते । गान्धी जी का सिद्धान्त था कि साम्प्रदायिक सरकार कदापि नहीं स्थापित होना चाहिये। दुराचारी लोग जब विचारों से पराजित होते हैं तो हिंसा का आश्रय लेकर सदाचारी महापुरुषों की हत्या करते हैं जिनको मृत्यु से भय नहीं होता।

भगवद्गीता में कहा है कि मृत्यु से कदापि नहीं डरना चाहिए। शरीर नश्वर है एक दिन अवश्य नाश होगा। आत्मा अमर है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानिदेही ॥

(भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक २२)

नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
नचैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

(भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक २३)

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥
भगवद्गीता अध्याय २ श्लोक १३

भगवद्गीता में लिखा है कि "जिस प्रकार पुराने वस्त्र छोड़कर मनुष्य नवीन वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर और नवीन शरीर प्राप्त करती है"। २२

"न आत्मा को शस्त्र काट सकते हैं न अग्नि जला सकती है न पानी भिगो सकता है न वायु सुखा सकती है"। २३

"जिस प्रकार से इस शरीर में आत्मा की कुमार अवस्था युवा अवस्था तथा बुढ़ापा होता है उसी प्रकार दूसरे शरीर का पाना होता है। बुद्धिमान् आदमी अवस्था के बदलने पर मोह नहीं करते"। १३

सदाचार की कुछ अन्य बातें:—

मादक वस्तुओं का प्रयोग न करना।

(१६) तमाखू निषेध

सब मादक वस्तुओं में तमाखू का प्रयोग सब से अधिक किया जाता है। इसके धुएं को मनुष्य हुक्का वा चिलम द्वारा अथवा सिगरट, बीड़ी या सिगार द्वारा पीते हैं और

तमाखू को सुगन्धित बना कर नाना प्रकार से खाते हैं। कुछ मनुष्य इस का चूर्ण नाक से सूंघते हैं। संसार में इस का बहुत प्रचार है। तमाखू के इतिहास को देखने से पता चलता है कि तमाखू का पौधा पहले पहल अमरीका में बोया जाता था और शेष संसार तमाखू के व्यसन से रहित था। कहा जाता है कि सन् १४६२ में जब कोलम्बस ने अमरीका को खोज निकाला तब पहले वह अमरीका के समीप क्यूबा द्वीप में पहुँचा। वहाँ उसने वहाँ के जङ्गली मनुष्यों को तमाखू पीते देखा। कोलम्बस तमाखू के पौधे को योरप में लाया वहाँ से यह एशिया में पहुँचा और इस का प्रयोग बढता चला गया। भारतवर्ष में तो नगरों से अधिक ग्रामों में इसका प्रयोग होता है। भारतवर्ष में नगर बहुत थोडे हैं ग्राम बहुत हैं जहाँ खेती होती है। खेती करने वाले प्राय सब चिलम पीते हैं और नगरों में श्रमजीवी बीडी पिया करते हैं। तमाखू का देश में इतना प्रचार हो गया है कि प्रत्येक जाति के लोग अपनी जाति की पचायत में अपराधी का हुका पानी बन्द करते हैं जिसका अर्थ है कि प्रत्येक हुका पीता है। नगरों में उत्सवों सरकारी आदि में सिगरट का देना अनिवार्य हो गया है, धनी तथा सभ्य कहलाने वाले सिगरट जरूर पीते हैं। बालक युवक और बुड्ढे सभी तमाखू का प्रयोग करते हैं। देश भर में करोड़ों

पया इस व्यसन पर व्यय किया जाता है और प्रायः
नुष्य यह नहीं जानते कि तमाखू कितनी हानिकारक है।
मारवू में निकोटीन नाम का एक विष होता है जो घातक
। अनुसन्धानों से सिद्ध हुआ है कि तमाखू में निकोटीन
प दो से लेकर आठ प्रतिशत होता है। जितनी कड़वी
मारवू होगी उतना ही अधिक यह विष होगा। यह विष
तना भयङ्कर है कि यदि निकोटीन की एक ग्रेन का
सवां हिस्सा एक कुत्ते को खिला दिया जावे तो वह
चा दस मिनट में मर जावेगा। विश्लेषण करने से पता
गता है कि एक पौण्ड या आध सेर तमाखू में लगभग
८० ग्रेन या २ तोला १॥ माशे निकोटीन वर्तमान है।
गर यह विष निकोटीन तीन सौ मनुष्य चाट लें तो
नि सौ मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है। यदि किसी
ांप के मुख में हुक्के की चीकट डाल दिया जाये तो
ांप मर जावेगा क्योंकि उस चीकट में निकोटीन
ष बहुत होता है और वह साप को भी मार देता है।
मारवू के धुएं में जो निकोटीन विष है वह मुख के द्वारा
फड़ों में जाकर उनको सुखा देता है और रक्त में मिलकर
म्पूर्ण शरीर को हराभरा नहीं होने देता। जिस प्रकार
चेलम पीने वालों की हथेली तमाखू के धुएं से पीली पड़

जाती है और हुक्के में तमाखू के धुएँ से दुर्गन्धि वाला चीकट हो जाता है इसी भांति फेफड़े रूज कर पीले पड़ जाते हैं और रक्त में दुर्गन्धियाला चीकट होजाता है जो अनेक रोग उत्पन्न करता है. जैसे आंखों की ज्योति कम होना, रतौन्धी होना अर्थात् रात में न देखना, जीर्णज्वर होना, हृदय की गति एक बारगी बन्द होना इत्यादि । हुक्के में तमाखू का धुआं पानी से होकर आता है इसलिये निकोटीन विष का कुछ भाग पानी में मिल जाता है। शेष मुख में जाता है परन्तु बीड़ी वा सिगरट में सब विष धुएँ के साथ मुख में जाता है इसलिये हुक्के से बीड़ी और सिगरट अधिक हानिकारक हैं । बच्चों की बाढ़ में रक्त में विष होने के कारण बाधा पड़ती है । इसलिये बच्चों को विशेष कर सिगरट आदि पीने से रोकना चाहिये । मनुष्य जब तमाखू के प्रयोग का अभ्यस्त हो जाता है तो उसे छोड़ने में कष्ट अनुभव करता है परन्तु दृढ़ संकल्प से उसे तमाखू छोड़ना चाहिये । इसके अतिरिक्त तमाखू में व्यय करना अपना धन व्यय करके अपने शरीर को दूषित करना है । यदि प्रत्येक मनुष्य तमाखू का प्रयोग छोड़ दे तो उसके धन की बचत होगी और उसका स्वास्थ्य नष्ट नहीं होगा और देश के करोड़ों रुपया की बचत होगी ।

सदाचारी मनुष्यों को तमाखू कदापि प्रयुक्त नहीं करनी हिये। महात्मा गांधी तँमाखू के प्रयोग के विरुद्ध थे।

(१७) मदिरा, अफ़ीम, भांग, गांजा आदि का निषेध

मदिरा इतनी हानिकर है कि [illegible] कारों ने अपने-अपने प्रांतों में कानून द्वारा इसका निषेध दिया है। मदिरा अफीमादि मादक वस्तुओं में सब से दोष यह है इनमें विष होता है जो मनुष्य के शरीर रक्त को दूषित कर देता है और मस्तिष्क को अचेतन कर है जिससे ज्ञान जाता रहता है। थोड़ी मात्रा में प्रयोग ने से थोड़ा प्रभाव पड़ता है परन्तु हानि अवश्य होती है।

मदिरा में एक और दोष है वह यह है थोड़ी मात्रा प्रयोग करते रहने से जिसे गरमी आदि के लिये मनुष्य सको पीते हैं उसका प्रभाव जान नहीं पड़ता, इसलिये सकी मात्रा बराबर बढ़ाने के लिये इसके सेवन करने वाले वश होजाते हैं। मात्रा जितनी बढ़ती जाती है उतनी शरीर और मस्तिष्क की हानि की भी मात्रा बढ़ती जाती है जिसका रिणाम यह होता है कि मदिरा पीने वाले रीर और मस्तिष्क के अनेक रोगों से ग्रसित हो जाते हैं और अपना बहुतसा धन पहले मदिरा के क्रय में और पश्चात

रोगों की चिकित्सा में व्यय करने के लिये विवश होते हैं मदिरा पीने वालों का प्रायः रक्त-संचार ठीक नहीं रहता क्यों कि मदिरा से रक्त हरा भरा न रह कर सूखा और मुर्झा हुआ रहता है जिसके कारण लकवा रोग और रक्त की चाल में अधिकता वा न्यूनता आदि के रोग हो जाते हैं। मस्तिष्क में उन्मादादि रोग भी हो जाते हैं। रक्त में दोष आने से शुक्र दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनके कारण मदिरा पीने वालों की सन्तान दुर्बल होती है। मदिरादि मादक वस्तुओं के प्रयोग करने वालों को उनके हानिकारक परिणामों से बचने के लिये पुष्टिकारक पदार्थ खाना पड़ते हैं जो यदि बिना मदिरा सेवन किये खाये जावें तो शरीर को अतिपुष्ट और बलवान बनावें कुछ मदिरादि सेवन करने वालों मे मदिरादि के दोष नहीं दिखलाई देते। उसका कारण यह है कि वे अधिक फल, घी आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाते हैं। परन्तु यह कहाँ कि बुद्धिमत्ता है कि दोषों को बुलाया जावे फिर दूर करने के उपाय किये जावें।

अनुसन्धानों से सिद्ध हो चुका है कि मदिरादि सेवन करने वालों के फेफड़े, यकृत् हृदयादि बहुत निर्बल और दूषित हो जाते हैं जिनके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। डाक्टरों ने मात्राएं भी लिखी हैं कि कितनी मदिरा सेवन से कितनी

नि इन अङ्गों में होती है। श्रमजीवी लोग और जिन जातियों
जातीय पञ्चायतें हैं वे मदिरादि मादक वस्तुओं का उत्सवों
दि में अधिक प्रयोग करते थे। धनी लोगों का कहना
क्या है। बड़े बड़े होटलों और बड़ी चाय पार्टियों में मदिरा,
तम भोजन का आवश्यक अङ्ग थी परन्तु सरकारी निषेध
यह व्यसन दूर होगया। करोड़ों रुपया जो प्रति वर्ष
दिरा पर व्यय होता था बच गया, लाखों मनुष्यों का
ारथ्य नष्ट होने से बच गया और सहस्त्रों वंश निर्धन होने
बचे। मदिरा सेवन करने से पाप करने को प्रोत्साहन
ता है। प्रायः चोर व्यभिचारी आदि मदिरा पीने वाले होते
। सरकार के मदिरा निषेध से अपराधों में कमी हुई। मादक
स्तुओं का प्रयोग सदाचार के विरुद्ध है और मनुष्यों
ो मादक वस्तुएं कभी नहीं प्रयुक्त करनी चाहिये। जो
ादक वस्तुओं के अभ्यस्त हैं उन्हें दृढ़ संकल्प से उनको
छोड़ना चाहिये ताकि उनका स्वास्थ्य ठीक रहे और उनका धन
दुरुपयोग से बचे। महात्मा गान्धी मादक वस्तुओं, विशेष-
कर मदिरा के निषेध को बहुत महत्व देते थे और उन्होंने विशेष
यत्न करके सरकार से मदिरा निषेध कानून पास कराया।

(१८) देशभक्ति

सदाचार का एक विशेष अंग देशभक्ति है। देशभक्ति का

रोगों की चिकित्सा में व्यय करने के लिये विवश होते
मदिरा पीने वालों का प्रायः रक्त-संचार ठीक नहीं रहता
कि मदिरा से रक्त हरा भरा न रह कर सूखा और
हुआ रहता है जिसके कारण लकवा रोग और रक्त की
में अधिकता या न्यूनता आदि के रोग हो जाते हैं। मस्तिष्
उन्मादादि रोग भी हो जाते हैं । रक्त में दोष आने से
दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनके कारण मदिरा पीने वालों
सन्तान दुर्बल होती है। मदिरादि मादक वस्तुओं के
करने वालों को उनके हानिकारक परिणामों से बचने के
पुष्टिकारक पदार्थ खाना पड़ते हैं जो यदि बिना मदिरा से
किये खाये जावें तो शरीर को अतिपुष्ट और बलवान बना
कुछ मदिरादि सेवन करने वालों में मदिरादि के दोष न
दिखलाई देते। उसका कारण यह है कि वे अधिक फल,
आदि पुष्टिकारक पदार्थ खाते हैं। परन्तु यह कहाँ कि बुद्धिम
है कि दोषों को बुलाया जावे फिर दूर करने के उपाय कि
जावें।

अनुसन्धानों से सिद्ध हो चुका है कि मदिरादि सेव
करने वालों के फेफड़े, यकृत् हृदयादि बहुत निर्बल और दूषि
हो जाते हैं जिनके कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। डाक्टरं
ने मात्राएं भी लिखी हैं कि कितनी मदिरा सेवन से कितनी

हानि इन अङ्गों में होती है। श्रमजीवी लोग और जिन जातियों में जातीय पञ्चायतें हैं वे मदिरादि मादक वस्तुओं का उत्सवों आदि में अधिक प्रयोग करते थे। धनी लोगों का कहना ही क्या है। बड़े बड़े होटलों और बड़ी चाय पार्टियों में मदिरा, उत्तम भोजन का आवश्यक अङ्ग थी परन्तु सरकारी निषेध से यह व्यसन दूर होगया। करोड़ों रुपया जो प्रति वर्ष मदिरा पर व्यय होता था बच गया, लाखों मनुष्यों का स्वास्थ्य नष्ट होने से बच गया और सहस्त्रों वश निर्धन होने से बचे। मदिरा सेवन करने से पाप करने को प्रोत्साहन होता है। प्रायः चोर व्यभिचारी आदि मदिरा पीने वाले होते हैं। सरकार के मदिरा निषेध से अपराधों में कमी हुई। मादक वस्तुओं का प्रयोग सदाचार के विरुद्ध है और मनुष्यों को मादक वस्तुए कभी नहीं प्रयुक्त करनी चाहिये। जो मादक वस्तुओं के अभ्यस्त है उन्हें दृढ़ संकल्प से उनको छोड़ना चाहिये ताकि उनका स्वास्थ्य ठीक रहे और उनका धन दुरुपयोग से बचे। महात्मा गान्धी मादक वस्तुओं, विशेष-कर मदिरा के निषेध को बहुत महत्व देते थे और उन्होंने विशेष यत्न करके सरकार से मदिरा निषेध क़ानून पास कराया।'

(१८) देशभक्ति

सदाचार का एक विशेष अंग देशभक्ति

अर्थ देश का भक्त होना है और देश भक्ति की परीक्षा यही है कि देश का भक्त देश के लिए कितना त्याग कर सकता है। जितना अधिक त्याग मनुष्य देश के लिए कर सकता है उतना ही अधिक वह देश-भक्त है। महात्मा गांधी ने अपनी बैरिस्ट्री छोड़कर अपना जीवन देशभक्ति में लगाया और अनेक कष्ट देश के लिए सहे। देश केवल भूमि, नदी, पर्वतादि ही नहीं है किन्तु देश का मुख्य अर्थ देश निवासी है। संक्षेप में देशभक्ति का सार है कि जिस देश की जलवायु तथा अन्नादि से हम पले हैं जिसमें हम रहते हैं और जिसमें हम मरेंगे उस देश के लिए हम अपने कर्तव्य पालन करें। देशभक्ति का स्वरूप भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न होता है जैसे जब देश परतन्त्र था तब देश के प्रति मुख्य कर्त्तव्य प्रत्येक देश निवासी का यही था कि वह यथाशक्ति उसके स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न करे। परन्तु जब महात्मा गांधी, सुभाषचन्द्रादि अनेक देशभक्तों के प्रयत्नों से देश स्वतन्त्र हो गया तो अब देश के प्रति सब का मुख्य कर्तव्य स्वतन्त्रता की रक्षा करना है। स्वतन्त्रता की रक्षा देश के शक्तिशाली होने से ही सकती है। देश कैसे शक्तिशाली बने इसके लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए और प्रत्येक देश निवासी यह दृढ़ संकल्प करे कि मेरा जीवन देश के लिए है अर्थात् मैं देश के लिए जीवित रहूँगा और देश के लिए मरूँगा।

जापानादि देशों में घरों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह अपना जीवन अपने देश के लिए समझें। देश ने जो विधान बनाया है उसका हम अनन्य भक्त होकर पालन करें। देश में स्वराज्य है अर्थात् अपना राज्य है क्योंकि हमारी सम्मति से जिनको हमने अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजा है उन्होंने देश का विधान बनाया है जिसका यही अर्थ है कि देश का विधान हमारा बनाया हुआ है। उसका हम सब को भक्त होना चाहिए और यदि उसमें कुछ त्रुटियाँ रह गई हैं तो दूसरी बार हम और अच्छे प्रतिनिधि भेज कर उसको सुधरवावें। परन्तु जब तक वह चालू है तब तक हम उसका भक्ति से पालन करें और सबसे पालन कराने में सरकार की सहायता करें। हमारे भारत देश में लोक राज्य है जिसमें भारत के प्रत्येक प्रौढ़ स्त्री व पुरुष निवासी को सम्मति देने का अधिकार है। इसलिए सब मिल कर अपने देश की रक्षा करें।

(१९) राष्ट्रीयता

देश निवासियों में स्थायी मेल स्थापित करने का मुख्य उपाय भारत देश निवासियों का एक राष्ट्र बनाना है। जिस प्रकार रक्त-संचार सब शरीर के अङ्गों को जोड़े रहता है और शरीर के एक अङ्ग पर कष्ट पड़ने पर सब अङ्ग उसकी रक्षा तुरन्त करते हैं इसी भांति एक भाषा एक विचार

और एक संस्कृति से भारत के सब निवासियों में इतना मेल होना चाहिये कि भारत के एक भाग पर कष्ट पड़ने पर सम्पूर्ण भारत उसकी रक्षा करे। भारत का इतिहास बताता है कि परस्पर की फूट से और स्थायी मेल न होने के कारण भारत परतन्त्र और दास बना था।

अमरीका देश का इतिहास भारत निवासियों का एक राष्ट्र बनाने में पथ-प्रदर्शक हो सकता है। उसके देखने से हम को ज्ञात होता है जब कोलम्बस ने अमरीका देश ढूंढ़ निकाला तब योरप के बहुत देशों के निवासी अमरीका में आकर बसने लगे क्योंकि वहां की भूमि बहुत उपजाऊ थी और खाली पड़ी थी। अंग्रेज, फ्रेंच, स्पेन, रूस, जरमनी, इटली आदि बहुत देशों के लोग वहां जाकर बसे। प्रत्येक देश निवासियों की भाषा, बोल-चाल और संस्कृति भिन्न भिन्न थी वे परस्पर बात चीत भी नहीं कर सकते थे क्योंकि एक दूसरे की भाषा नहीं जानते थे। वहाँ अमरीका के सब निवासियों के नेताओं ने विचारा कि अमरीका देश को शक्तिशाली बनाने के लिये यह अनिवार्य है कि अमरीका निवासियों का एक राष्ट्र बनाया जावे तभी सब में स्थायी मेल स्थापित हो सकता है। एक राष्ट्र के लिये यह अनिवार्य है कि उसकी एक भाषा हो और एक संस्कृति

हो। यतः अङ्गरेजी सबकी व्यापार की भाषा थी और सब के नेता उसे जानते थे, इसलिये अमरीका में रहने वाले सब देशों के निवासियों ने निर्णय किया कि कुल अमरीका देश की एक भाषा हो और वह अङ्गरेजी हो। यतः वहां स्वराज्य था वहां के निवासियों ने एक कानून पास किया कि अमरीका निवासी प्रत्येक सात वर्ष के लड़के लड़की को अङ्गरेजी की अनिवार्य शिक्षा दी जावेगी। जो माता पिता अपनी सन्तानों को स्कूल नहीं भेजेंगे उनको राजकीय दण्ड मिलेगा। सब के लड़के लड़कियाँ अनिवार्य रूप से अङ्गरेजी पढ़ने लगे और १५ वर्ष पढ़ने के पश्चात् जब लड़के लड़किया अङ्गरेजी पढ़ चुके तो उनसे प्रतिज्ञा ली गई कि वह अपने सब व्यवहारों में अङ्गरेजी का ही प्रयोग करेंगे। वैसा ही हुआ और एक पीढ़ी में ही अमरीका देश की राष्ट्र भाषा अङ्गरेजी होगई। जब बुड्ढे माता पिता नहीं रहे तो उनकी सन्तानें अपने अपने देश की भाषा को भी नहीं जानती थीं जहां से वह सब पहले आये थे केवल अङ्गरेजी ही जानती थीं। एक राष्ट्र हो जाने पर अमरीका में समाचार पत्रों द्वारा सब के एक विचार हुए और सब अमरीका निवासी एक अमरीका राष्ट्र बन गये और अमरीका की शक्ति बढ़ती ही गई यहां तक कि आज संसार में अमरीका सब से अधिक शक्तिशाली देश है। किसी देश की

सब प्रकार की उन्नति के लिये स्वराज्य इसीलिये अनिवार्य है कि हम जो उन्नति चाहें कानून द्वारा कर सकते हैं। स्वराज्य होने के कारण अमरीका में एक कानून पास करने से ही सम्पूर्ण अमरीका निवासी शिक्षित होगये और अमरीका की एक राष्ट्रभाषा अङ्गरेजी होगई और अमरीका निवासी जो भिन्न-भिन्न मातृभाषाएं रखते थे उन सब की एक मातृभाषा सम्पूर्ण अमरीका में इतने थोडे समय में होगई।

जापान देश का इतिहास बताता है कि यहां जापान निवासियों का एक दृढ राष्ट्र बनाने के लिये जापानी नेताओं ने यह विचारा कि सम्पूर्ण जापान निवासी शिक्षित होजावें। उन्होंने सब देश में अनिवार्य और निश्शुल्क जापानी भाषा कर दी और आर्थिक कठिनाई एक विचित्र रीति से दूर की। जापान में मन्दिरों में बहुत धन चढावे में प्रतिवर्ष आता था जो मन्दिरों के पुजारियों की निजी सम्पत्ति होती थी। जापान ने एक कानून पास किया कि जापान भर में मन्दिरों के पुजारियों का वेतन नियत होगा और उनको मन्दिरों के धन का हिसाब रखना पडेगा जो सरकारी निरीक्षक प्रतिवर्ष जाँचा करेंगे। मन्दिरों का व्यय निकाल कर सब बचत शिक्षा में व्यय की जावेगी। इस प्रकार सुगमता से सब जापान देश में अनिवार्य और निश्शुल्क शिक्षा होकर सम्पूर्ण जापान निवासी शिक्षित

होकर एक दृढ़ राष्ट्र बन गये । अमरीका और जापान का आदर्श संमुख रखकर हम को सम्पूर्ण भारत निवासियों को शिक्षित बनाकर उनका एक राष्ट्र अनिवार्य रूप से बनाना है। और सुदृढ राष्ट्र के लिये यह अनिवार्य है कि कुल भारत देश की एक मातृभाषा हो । सम्पूर्ण भारतवर्ष को अमरीका के भांति एक अत्यन्त शक्तिशाली देश बनाने के लिये सब भारत-वासियों को अपनी देश भक्ति का परिचय देना होगा। देशभक्ति की वेदी पर अपनी प्रान्तीय पृथकता तथा प्रान्तीय मातृभाषा का बलिदान करना होगा और सम्पूर्ण भारतवर्ष की एक राष्ट्रभाषा को स्वीकार कर उसी को मातृभाषा बनाना होगा । भारत सरकार सम्पूर्ण भारत में निश्शुल्क और अनिवार्य शिक्षा करके और भारत की एक राष्ट्रीय तथा मातृ-भाषा बनाकर एक पीढ़ी में सम्पूर्ण भारतवासियों का एक दृढ़ राष्ट्र बना सकती है जैसे अमरीका सरकार ने किया था और उस की भांति भारत संसार में सब से अधिक शक्ति-शाली देश हो सकता है परन्तु भारतवासियों को देशभक्ति का सदाचरण करना होगा और त्याग कर देशभक्ति दिखाना होगी।

(२०) भारत की राष्ट्रभाषा और भारतीय संस्कृति.

सम्पूर्ण भारतवर्ष की एक राष्ट्रभाषा होना चाहिये और

भारतवर्ष के कोने कोने में प्रचार करे किन्तु समस्त संसार में इसका प्रचार करे ताकि समस्त संसार में भारतीय संस्कृति फैल कर संसार को एक राष्ट्र बना ले और समस्त संसार में एक सरकार स्थापित हो जावे। तब युद्ध करने को कोई शत्रु ही न मिले और संसार के सब युद्ध बन्द होकर समस्त संसार स्वर्गधाम बन जावे और सब मनुष्य शान्ति और आनन्द का जीवन व्यतीत करें।

अन्त में संक्षेप में सदाचार, अर्थात् सार्वभौम धर्म यम नियम आदि हैं यम (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह और नियम (६) शौच (७) सन्तोष (८) तप (९) स्वाध्याय (१०) ईश्वर प्रणिधान कहलाते हैं और वैसे ही (११) परोपकार और जनसेवा (१२) अनुशासन (१३) परस्पर सदाचार का व्यवहार (१४) अस्पृश्यता निवारण (१५) आचारिक साहस (१६) तमाखू निषेध (१७) मदिरा, अफीम, भाँग, गांजादि निषेध (१८) देशभक्ति (१९) राष्ट्रीयता और (२०) भारत की राष्ट्रभाषा और भारतीय संस्कृति का आचरण करना भी सदाचार के भाग हैं। यह सब धर्मों की आत्मा और सार हैं और प्रधान अङ्ग हैं और इन्हीं की रक्षा के लिये सब धर्मों के गौण अङ्ग बने हैं जो (१) धर्म पुस्तक और धर्म प्रवर्तक (२) धर्म के संस्कार

और रस्मरिवाज और ईश्वर से व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ने के उपाय (३) धर्म सम्बन्धी दार्शनिक विचार हैं जो देश काल आदि परिस्थितियों के कारण सब धर्मों में भिन्न भिन्न हैं परन्तु सदाचार सब धर्मों में समान है। इसलिये सदाचार अर्थात् सार्वभौम धर्म पर चलने के लिये सब धम वाले मिल कर सब प्रकार से प्रयत्न करें और धर्म के भिन्न भिन्न गौण अङ्गों के लिए सब धर्म वाले परस्पर सहिष्णुता रक्खें तो संसार से कलह और अशान्ति सदैव के लिए नष्ट हो जावे और संसार आनन्दमय स्वर्गधाम बन जावे। यह सदाचार अर्थात् सार्वभौम धर्म केवल सब धर्मों की आत्मा और आधार-शिला ही नहीं है प्रत्युत मनुष्य समाज की भी आधार शिला है जिसकी रक्षा के लिए संसार के प्रत्येक देश के क़ानून बनाये गये हैं जैसे हिंसा, असत्य, कपट, चोरी परस्त्रीगमन आदि पाप और अपराधों को रोकने के लिये ही सब राज्यों में दण्ड नियत किये गए हैं, और अपराधियों के लिए बन्दी-गृह बनाए गए हैं। यही सदाचार समाज-शास्त्र का आधार शिला है। सदाचार को धारण करने से सब मनुष्य त्यागी और परोपकारी हो जाते हैं और सत्यता के व्यवहार करने से सबके प्रिय हो जाते हैं जिस कारण सब को सुख से भोजन वस्त्रादि मिलने और

में यह दोष नहर है कि लिखा कुछ जाता है और पढ़ा भिन्न जाता है जो बहुत हानिकर है उदाहरण में यू० पी० प्रान्त की एक घटना बड़ी मनोरञ्जक है। यू० पी० के लफ्टीनेंट गवरनर (जो पहले गवरनर के स्थान पर थे) ने उर्दू में एक आज्ञा लखनऊ को भेजवाई कि अमुक तिथि पर वह लखनऊ आवेंगे। १८ नाव गोमती पर तैयार मिलें। लखनऊ के शासकों ने १४ नाऊ पढ़ा और १४ नाऊ हजामत बनाने के लिये तैयार गोमती नदी पर भेज दिये। जब उक्त महोदय ने १४ नावें न पाईं और नाऊ पाये तो कारण पूछा। बतलाया गया कि उर्दू में नाव और नाऊ एसी शब्द को पढ़ सकते हैं तभी से यू० पी० सरकार ने क़ानून बनाया कि न्यायालयों के नोटिस सम्मनादि हिन्दी लिपि में भी अनिवार्य रूप से हों तब से वे सब उर्दू हिन्दी दोनों लिपियों में होते हैं।

भारत निवासियों का एक दृढ़राष्ट्र बनाने के लिये जहाँ एक राष्ट्रीय भाषा और एक राष्ट्रीय लिपि की अनिवार्य रूप से आवश्यकता है वहाँ भारत का एक राष्ट्रीय संस्कृति भी अनिवार्य है।

भारत की राष्ट्रीय संस्कृति

भारत निवासियों को एक दृढ़राष्ट्र बनाने के लिये यह

नवार्य है कि भारत की एक राष्ट्रभाषा के साथ सम्पूर्ण
रत की एक राष्ट्रीय संस्कृति हो जिसको भारत के सब
वासी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिखादि अपनी संस्कृति
सकें।

सदाचार के सब अङ्ग जो इस गान्धी सदाचार शास्त्र
बतलाये गये हैं वही भारत की राष्ट्रीय संस्कृति हैं जिसका
र श्रेयस् मार्ग है जिसमें परोपकार, स्वार्थत्याग, सादगी
जीवन, सत्य उच्चविचार और अहिंसादि का पालन करना
दाचरण हैं। जिसका उपदेश वेद, भगवद्गीता, उपनिषद्
मायण, कुरान, बाईबिलादि में है।

इस भारतीय संस्कृति के बिल्कुल विरुद्ध पाश्चात्य देश
था अमरीकादि की संस्कृति है जिसका सार प्रेयस् मार्ग
: जिसमें स्वार्थ के लिये और केवल अपने आनन्द के लिये
आवश्यकताएं जितनी बढ़ाई जा सकें उतनी बढ़ाकर कृत्रिम
जीवन व्यतीत किया जाता है और जिसमें पशुबल पर असत्यादि
दुराचारों का सहारा लेकर दुर्बल देशों पर पशुबल से राज्य
किया जाता है और और देशों पर उनको परतन्त्र बनाकर
साम्राज्य शासन लादा जाता है।

प्रत्येक भारतवासी का यह परम कर्तव्य है कि वह
भारतीय संस्कृति अर्थात् इस गान्धी सदाचार शास्त्र का न केवल

परस्पर प्रेम का व्यवहार होने से ऊँच नीच का भेद भाव मिट कर संसार स्वर्गधाम बन जाता है । सदाचार मनुष्य जीवन और राष्ट्रों के जीवन की सफलता की कुञ्जी है । सदाचार ही योग-शास्त्र की आधार शिला है जिस पर चलने से सम्पूर्ण सान्सारिक सुख तथा परम आनन्द मोक्ष प्राप्त होती है । सदाचार पर कोई मतभेद नहीं इस पर सब धर्म, सब मनुष्य और सब देश सहमत हैं इसका कोई विरोधी नहीं । इसलिए सब मनुष्यों को सदाचार का आचरण कर अपने आपको और संसार को सुखी बनाना चाहिएं ।

स्वतन्त्र-भारत

में

संस्कृत सीखिये